कोरोना-काल // प्रमोद रंजन

भय की महामारी

जर्मनी के चित्रकार स्कोगलफ़ार
की एक कृति.

पिछले आठ महीने से सारी दुनिया कोविड-19 ('कोरोना वायरस डिज़ीज़' जिसका पता 2019 में लगा) नामक संक्रामक रोग से आक्रांत है। इस बीमारी ने मनुष्य द्वारा रचित संसार के साथ ऐसा कुछ किया है जो पहले कभी न देखा गया, न सुना गया, और न ही कल्पित किया गया। वैसे तो प्रत्येक महामारी मनुष्य के मन में कुछ बेचैनियाँ पैदा करती ही हैं, लेकिन इस महामारी की अपूर्वता ज़्यादा बड़ी हद तक इसके प्रति सरकारी तंत्रों की अनुक्रिया, विश्व-संगठनों के रवैये, दैत्याकार मीडिया-कम्पनियों और ग़ैर-सरकारी ग्लोबल संगठनों की कारिस्तानियों का संचित नतीजा है। इतालवी दार्शनिक आगाम्बेन के शब्दों में कहें तो इन ताक़तों ने मिल कर 'एक महामारी का आविष्कार' करके उसके प्रति 'अनुपातहीन भय' को जन्म दिया है। ये कारिस्तानियाँ इसलिए कामयाब हो पाईं कि महामारी से पैदा हुए भय को व्यक्तिगत और सामाजिक नियंत्रण के एक औज़ार में बदल जाने दिया गया। प्रधानमंत्रियों और राष्ट्रपतियों से लेकर रेज़िडेंट वेलफ़ेयर एसोसिएशनों जैसी चौधरी-संस्थाओं तक, जहाँ मौक़ा लगा, वहाँ इस डर का लाभ उठा कर छोटी से ले कर बड़ी निरंकुशताओं को पुष्ट किया गया। चंद अपवादों को छोड़ कर समाज और राज्य के आलोचक बुद्धिजीवियों ने भय को उपकरण बनाने वाले नियंत्रक और शासक-स्वार्थों को आड़े हाथों लेने की तत्परता नहीं दिखायी। नतीजतन इन शक्तियों को कोविड-19 का अधिक से अधिक भयादोहन करने का मौक़ा मिल गया।

बीसवीं सदी की शुरुआती अवधि प्लेग और स्पेनिश फ़्लू जैसी महामारियों से आहत हुई थी। लेकिन उस दौर का इतिहास भी ऐसी किसी अपूर्वता की जानकारी नहीं देता। नब्बे के दशक में भूमण्डलीकरण की शुरुआत के बाद यानी पिछले तीस साल की छोटी-सी अवधि में विश्व ने कम से कम चार बड़ी महामारियों को देखा है। ये हैं एचआईवी, इबोला, एच1एन1 और ज़िका। इन चारों के भी राजनीतिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव हुए हैं। लेकिन उनमें भी मनुष्य और उसके बनाए हुए संसार को इतनी निर्ममता से गतिशून्य कर देने की क्षमता नहीं थी। दरअसल, इन बीमारियों से लड़ने के लिए लॉकडाउन (घरबंदी) जैसी युक्ति का इस्तेमाल नहीं किया गया। प्रत्येक महामारी के गर्भ से भय का जन्म होता है। असमय, अचानक और अघोषित मृत्यु के डर से मनुष्यता को स्तम्भित हो जाना पड़ता है। अतीत की हर महामारी किसी न किसी रूप में डर की ऐसी संरचनाओं को जन्म देती रही है। लेकिन, भूमण्डलीकरण के ज़माने की पाँचवीं बीमारी कोविड-19 के गर्भ से भय की एक ऐसी विश्वव्यापी जकड़बंदी ने जन्म लिया है जो पहले कभी नहीं देखी गयी। एक बड़ी हद तक यह जकड़बंदी लॉकडाउन की रणनीति का परिणाम है।

कोविड-19 की भयावहता का एक कारण यह बताया जाता है कि इसकी न कोई अंग्रेज़ी दवा है, न ही वैक्सीन। यानी जब तक इसकी वैक्सीन तैयार नहीं हो जाती, तब तक दुनिया ख़तरे में है। वास्तविकता यह है कि वायरस मनुष्यों का पीछा उस आदिमकाल से करते रहे हैं, जब वह ठीक से मनुष्य बना भी नहीं था और पेड़ों पर रहता था। हमारे शरीर वायरस से लड़ने की प्रक्रिया में सीखते रहे हैं। इस प्रक्रिया में हम बीमार हो जाते हैं और कभी-कभी ऐसी बीमारी घातक भी सिद्ध होती है। वायरस बार-बार आते हैं और हर बार हमारा शरीर सुरक्षा करना सीख जाता है और पहले की तुलना में मज़बूत हो जाता है। यह सिलसिला लाखों सालों से चला आ रहा है। यही वजह है कि हमारे जीनोम की 40 प्रतिशत से अधिक समावेशी वायरल आनुवंशिक सामग्री से बनी है। कोविड -19 जैसे वायरस का प्रसार कोई नयी बात नहीं है। अगर कुछ नया है तो इससे संबंधित हमारी प्रतिक्रिया।

यह प्रतिक्रिया जिस तरह हुई है, या इसे जिस तरह से नियोजित रूप से करवाया गया है, उससे निकलने वाले डर के इस शिकंजे की संरचनाएँ बहुमुखी हैं। वे व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक, स्वास्थ्य संबंधी और आर्थिक दायरे को गहराई से प्रभावित कर रही हैं। व्यक्तिगत स्तर पर मनुष्य अकेलेपन और अजनबीयत की यातना भोगने के लिए अभिशप्त है। सामाजिक स्तर पर सामुदायिक सुरक्षा का ताना-बाना बेअसर हो गया है। दुनिया भर में ग़रीबों पर, विशेषकर भारत में, ऐसी मार पड़ी है जिसके बारे में कभी कल्पना भी नहीं की गयी थी। राजनीतिक स्तर पर लोकतंत्र के आग्रह और असहमति के स्वरों को क्वारंटीन में धकेल दिया गया है। शिक्षा के क्षेत्र में विश्वविद्यालय और कॉलेज के खुले परिसर को एक आयताकार डिजिटल स्क्रीन की संकीर्णताओं में क़ैद कर दिया गया है। स्वास्थ्य प्रणालियों ने कोरोना-केंद्रित हो कर अन्य रोगों की तरफ़ से मुँह फेर लिया है। सामाजिक दूरियों ने सांस्कृतिक गतिकी और रचनाशीलता लगभग शून्य कर दी है। अर्थव्यवस्थाएँ तबाही के कगार पर हैं।

लॉकडाउन के दौरान न उत्पादन हुआ, न उपभोग, न आमदनी, न ख़र्च। पूरे समाज पर प्रलय के बाद छा जाने वाली वीरानगी हावी हो गयी। वह एक विशाल अस्पताल जैसा लगने लगा जिसमें केवल दवा की दूकानें ही खोलने की इजाज़त थी।

गूगल ट्रेंड बताता है कि फ़रवरी से अप्रैल के बीच दुनिया के अधिकांश लोग इंटरनेट पर सिर्फ़ इसी महामारी के बारे में जानकारियाँ जुटा रहे थे। जिज्ञासा इतनी थी कि लोगों ने इन महीनों में रात में सोने से पहले और सुबह जागने के बाद सबसे पहले इसी विषय पर खोजबीन की। मानव इतिहास में एक साथ एक विषय पर इतनी जिज्ञासा कभी नहीं रही। गूगल ट्रेंड के ही अनुसार जुलाई आते-आते लोग थकने लगे। उनके पास बस यही सवाल बचा कि क्या यह संक्रामक रोग कमज़ोर हो रहा है, क्या यह कभी ख़त्म होगा? हमारा युग सूचनाओं की भरमार और उनके अबाध प्रवाह के लिए जाना जाता है। ऐसे युग में भी चीन, अमेरिका, युरोप और विश्व स्वास्थ्य संगठन जैसी ग्लोबल ताक़तें अगर इस महामारी के बारे में अनिश्चितता का निवारण कर सकने वाली आधिकारिक सिक्काबंद सूचनाएँ देने को अपनी प्राथमिकता नहीं बनाती हैं, तो यही माना जा जाएगा कि कहीं न कहीं अनिश्चितता से उपजने वाले भय की खेती कुछ अपरिभाषित निहित स्वार्थों द्वारा की जा रही है। इस अभूतपूर्व परिस्थिति का समाज-वैज्ञानिक आख्यान आने वाले समय में रचा जाएगा। लेकिन, उस घटनाक्रम, उन तथ्यों और उन शक्तियों की गतिविधियों को समय के पटल पर अंकित करना ज़रूरी है जो कोरोना-प्रसूत भय और उसके असाधारण परिणामों की ज़िम्मेदार हैं।

प्रमोद रंजन द्वारा की गयी कोरोना-काल की इस विस्तृत समीक्षा के केंद्र में उन कारणों का लेखा-जोखा लिया गया है जो पहली नज़र में कोविड-19 के गर्भ से जन्मे भय के ज़िम्मेदार लगते हैं। यह शोधपरक लेख प्रचलित 'कांसपिरेसी थियरीज़' से बचते हुए स्वास्थ्य संबंधी आपात्काल और किसी बीमारी को वैश्विक महामारी घोषित करने की नीतियों, इन निर्णयों से जुड़े कॉरपोरेट स्वार्थों, महामारी के दौरान लगातार नकारात्मक और डराने वाली ख़बरें फैलाने के प्रकरण, संक्रमण के समाचारों को बिना किसी तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य के प्रस्तुत करने, महामारी-मॉडलिंग के विशेषज्ञों द्वारा करोड़ों लोगों के संक्रमित होने और मर जाने की ख़ौफ़नाक भविष्यवाणियाँ करने, तसल्ली देने वाली ख़बरों को रोकने, कड़े से कड़े लॉकडाउन को ही एकमात्र युक्ति के रूप में स्थापित करने, मौतों की संख्या को बढ़ा-चढ़ा कर बताने, बड़ी सोशल मीडिया कम्पनियों द्वारा अल्गोरिद्म और आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस की मदद से अपने मंचों पर ज़बरदस्त सेंसरशिप थोपने, सरकारों द्वारा कड़ी सज़ाओं और जुर्माने के प्रावधान करने, तरह-तरह से पारम्परिक मीडिया-नियंत्रण करने और आँकड़ों की कारीगरी द्वारा भय का माहौल बनाने के पीछे की राजनीति पर पड़ा पर्दा हटाता है।

विश्व-भर के सूचना देने वाले तमाम तंत्र एक सुर में संकेत कर रहे हैं कि कोविड-19 इतिहास की सबसे भयंकर बीमारी है। हज़ारों लोग रोज़ इससे संक्रमित हो रहे हैं। सैकड़ों की जान जा रही है। इसलिए हमें इससे बचने के लिए मनुष्य की आज़ादी को सीमित करने, उसके अधिकारों को छीनने और व्यवस्था को अधिक क्रूर बनाने वाले प्रतिबंधों को स्वीकार करना होगा। इन सूचनाओं, सलाहों और आदेशों पर संदेह करने वाले भारत समेत तीसरी दुनिया के ऐसे निवासियों की संख्या कम नहीं है जो अपने पारम्परिक मीडिया-समूहों और सत्ता-प्रतिष्ठान को संदेह की नज़र से देखते हैं। लेकिन जब उन्हें बताया जाता है कि सिर्फ़ उनकी देश की सरकार ने ही नहीं, बल्कि दुनिया के अधिकतर देशों की सरकारों ने भी ऐसे ही क़दम उठाए हैं, तो अपने संदेह पर उनका विश्वास कमज़ोर हो जाता है। जब वे पाते हैं कि सूचनाओं और विचारों के वैकल्पिक स्रोत के लिए उनका सबसे प्रिय साथी गूगल का सर्च इंजन और सोशल मीडिया भी वही बातें बोल रहा है, जो मुख्यधारा के मीडिया-संस्थान बोल रहे हैं, तो उनके पास अपने संदेह को दरकिनार कर देने के अलावा कोई चारा नहीं रहता। यही कारण है कि दुनिया में बड़ी संख्या ऐसे लोगों की हो गयी है, जो कोविड-19 से बचने के लिए कड़े सामाजिक और प्रशासनिक प्रतिबंधों को आवश्यक मानने लगे हैं। इसके विपरीत सच्चाई

दिल्ली और नोएडा से उत्तर प्रदेश जाने वाले प्रवासी मज़दूरों की इस कोविड-यातना के चित्रकार हैं **लबानी जाँगी** जो सेंटर फ़ॉर स्टडीज़ इन सोशल साइंसेज़, कोलकाता में श्रम-प्रवसन पर पीएचडी कर रहे हैं.

यह है कि कोरोना-काल में इंटरनेट पर सूचनाओं के सहज प्रवाह को बाधित कर दिया गया है। ऐसी सूचनाओं को पीछे धकेल दिया गया है जो कोविड की कथित भयावहता को सही परिप्रेक्ष्य में पेश कर सकती थीं। नये मीडिया के साथ-साथ पारम्परिक समाचार-माध्यमों को क़ाबू में करने के लिए भी विश्वव्यापी प्रयास हुए हैं। झूठी ख़बरों, फ़र्ज़ी पूर्वानुमानों और संदिग्ध शोधों के तेज़ प्रसार से अफ़रा-तफ़री के कारण अवैज्ञानिक निदानों को उछाल मिला है।

जाति-व्यवस्था से ग्रसित भारत में कोविड-19 ने सामाजिक क्रांति के क़दमों को भी पीछे की ओर मोड़ना शुरू कर दिया है। शहरों की भूमिका पिछड़े और दलितों के मुक्ति-दाता के रूप में उभरी थी। उनमें से अनेक गाँवों की सामाजिक-आर्थिक जकड़न से छुटकारा पाने के लिए शहरों में आये थे। शहर उनके श्रम का अपेक्षाकृत बहुत अधिक मूल्य चुकाते थे। कोविड-19 से कथित युद्ध ने इस तबक़े के करोड़ों लोगों को वापस उस ग्रामीण व्यवस्था में धकेल दिया है जहाँ खेती-योग्य ज़मीन पर उनका नाम-मात्र का हक़ है।

कोविड-19 से बचने के लिए लॉकडाउन की शुरुआत भारत से पहले अमेरिका और ब्रिटेन सहित दुनिया के कई हिस्सों में हुई थी। उस दौरान नागरिकों के दमन की ख़बरें सबसे ज़्यादा केन्या व अन्य अफ़्रीकी देशों से आ रही थीं। उस समय ऐसा लगा था कि भारत का हाल बुरा अवश्य है, लेकिन उन देशों की तुलना में भारत के लोकतंत्र की जड़ें गहरी हैं। अनेक लोगों को उम्मीद थी कि भारत की सिविल सोसायटी, जो कम से कम हमारे शहरों में मज़बूत स्थिति में है, उस तरह के दमन की सम्भावना को धूमिल कर देगी। लेकिन यह सब कुछ बालू की भीत ही साबित हुआ। आधुनिकता और नागरिक-अधिकार संबंधी भारतीय नारे सिर्फ़ एक पर्दा की तरह थे, जो हट गया। जैसा कि बाद में कुछ अध्येताओं ने भी चिह्नित किया कि भारत का लॉकडाउन दुनिया में सबसे सख़्त, क्रूर और

मानवाधिकारों का सबसे अधिक हनन करने वाला निकला। भले ही 'भारत के अमीरों ने लॉकडाउन को अपनी इच्छाओं के अनुरूप पाया, लेकिन ग़रीबों के लिए इसकी एक अलग ही दर्दनाक कहानी थी। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को उनकी निरंकुश और हिंदुत्व केंद्रित कार्यशैली को लगातार कोसते रहने वाले भारत के कथित द्विज-उदारतावादी, अभिजात तबक़े ने सम्पूर्ण घरबंदी के पक्ष में उनके द्वारा घोषित लॉकडाउन के पीछे लामबंद होने में तनिक भी समय नहीं गँवाया।'[1]

वैसे यह कोई अप्रत्याशित बात नहीं थी। सत्ताधारियों द्वारा 'संविधानसम्मत' ढंग से लोकतंत्र को सीमित करने की कोशिशें पहले से ज़ारी थीं। कोरोना-काल ने इस प्रवृत्ति को अपने चरम पर पहुँचा दिया। कमोबेश यही हाल राजनीतिक विपक्ष का है। सत्ता पक्ष ही नहीं, विपक्ष भी उदारतावादी अभिजात का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि समाजवाद और आम्बेडकरवाद जैसी विचारधाराओं के पैरोकारों ने नागरिक अधिकारों को लेकर कोई विश्व-दृष्टि विकसित नहीं की है। वामपंथियों से इस दौर में उम्मीदें थीं; लेकिन मार्क्सवाद को धर्मग्रंथ में बदल चुके इन बुद्धिजीवियों ने अपनी 'वैज्ञानिक चेतना' का प्रयोग शुतुरमुर्ग की तरह रेत में सिर छुपाने और सरकार को कड़े क़दम न उठाने का उलाहना देने में किया। बात विभिन्न राजनीतिक धाराओं या ख़ास भारतीय क़िस्म के द्विज-उदारतावाद तक सीमित नहीं है। हमारे देश में गाँव और शहर, गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा प्राप्त तथा कम शिक्षित अथवा निरक्षर लोगों के बीच की फाँक बहुत गहरी हो चुकी है। इसके सिरों के बीच शायद ही कोई पुलिया साबुत बची होगी। भाषाओं की दृष्टि से देखें, तो अंग्रेज़ी व अन्य भारतीय भाषाओं को बरतने वालों के जीवन-स्तर और सरोकारों के बीच एक बहुत चौड़ी खाई है।[2] गाँवों के कम शिक्षित और शहरों में आ बसे उच्च शिक्षित के बीच कोई भाईचारा और अपनापन नहीं है।

काम की तलाश में अपने गृह-क्षेत्रों से दूर गये मज़दूरों व सेवा-क्षेत्र से जुड़े अन्य कामगारों, जिनमें से अधिकांश निरक्षर या बहुत कम पढ़े-लिखे हैं, ने लॉकडाउन के कारण जो अकथनीय पीड़ा झेली है, उससे पुराने के साथ-साथ यह नया उदारतावादी वर्ग भी असम्पृक्त बना रहा। इतना ही नहीं, उन्होंने इन कामगारों को अविवेकी, रोग के वैज्ञानिक आधारों को न समझने वाली एक अराजक भीड़ के रूप में देखा— जो सिर्फ़ उनकी दया की पात्र हो सकती थी। निम्न जातियों से आने वाले बुद्धिजीवियों और शहरों में रहने वाले अन्य समाजकर्मियों में, जिनकी पहली पीढ़ी ही शहरों में बसी है, इनके प्रति एक क़सक ज़रूर थी, लेकिन वे भी इन्हें समान अधिकारों-सम्पन्न नागरिकों के रूप में देखने में अक्षम थे।[3] भारत में पुलिस ने 25 मार्च से 30 अप्रैल के बीच लॉकडाउन तोड़ने की सज़ा स्वरूप अलग-अलग जगहों पर 15 ग़रीब व निम्न-मध्यमवर्गीय लोगों की हत्या कर दी।[4] सैकड़ों कामगार पैदल चलते-चलते सिर्फ़ थकान से मर गये। लेकिन न दक्षिण, न वाम, न मध्य और न ही हाशियाकृत समुदायों की राजनीति करने वालों की ओर से आवाज़ आयी कि हद से ज़्यादा कड़ा और समरूप लॉकडाउन ग़लत है; और इसे अलग-अलग क्षेत्रों, परिस्थितियों, बीमारी के प्रसार और सघनता के लिहाज़ से समायोजित करके किया जाना चाहिए। लेकिन, ऐसा न कहा गया, न किया गया। बीमारी से भयभीत सभी राजनीतिक, सामाजिक और बौद्धिक ताक़तों ने नागरिकों के भयावह दमन और उत्पीड़न को एक कथित बड़े संकट से बचाने वाले अनिवार्य उपकरण के रूप में देखना पसंद किया। इसका जो नतीजा निकला, उसे संक्षेप में इस प्रकार सूत्रबद्ध किया जा सकता है।

---

[1] https://www.nytimes.com/2020/05/30/opinion/sunday/india-coronavirus-lockdown-inequality.html

[2] https://www.tandfonline.com/doi/full/10.1080/23322039.2014.941510

[3] प्रमोद रंजन (2020), 'भारत में लॉकडाउन, पत्रकारिता और गेट्स फ़ाउंडेशन', *तहलका*, वर्ष 12, अंक 14 (30 जून) : 34.

[4] https://www.thehindu.com/news/national/nhrc-seeks-reports-from-8-states-on-15-deaths-after-police-action/article31780215.ece?fbclid=IwAR0Xm9TWA3sWvFUNc21R8Zn8agHPKgsIDCjT8GFqd5vKJv-GALLa7oPxiNRY.

कोविड-19 जनित इन प्रतिबंधों का गहरा आघात दुनिया की समाज-व्यवस्था और मनोविज्ञान पर पड़ा है। करुणा और मैत्री जैसे भावों में भारी गिरावट हो रही है। लोग अपने मित्र-परिचितों से भी डरने लगे हैं। अपने सगों की लाशें उठाने तक के लिए तैयार न होने के प्रकरण सामने आये हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन और अंतरदेशीय परोपकार-व्यवसाय में लगी वैश्विक-संस्थाएँ एक ओर पूरी निर्लज्जता से सरकारों को अपने नागरिकों को निगरानी के दायरे में रखने की सलाह दे रही हैं, तो दूसरी ओर नागरिकों को कहा जा रहा है कि उनके बचने का एक ही तरीक़ा है कि वे अपने 'व्यवहार' में परिवर्तन लाएँ। व्यवहार में परिवर्तन से उनका आशय है कि सामाजिकता को न्यूनतम कर दें, उत्सवों को भूल जाएँ, शोक की घड़ियों को एकांतिक बना दें और सबसे बढ़ कर संस्थाओं को किसी प्रकार से चुनौती न दें— न सामूहिक रूप में कहीं जमा होकर, न ही उनकी नीतियों का वैचारिक विरोध करके, जो नागरिकों के 'व्यवहार को ठीक करने के लिए' अमल में लाई जा रही हैं। कार्यालय और शिक्षण-संस्थानों का जन्म आधुनिक-काल की एक उपलब्धि थी। कामकाज और शिक्षा के लिए निर्धारित इन जगहों ने पिछली कुछ सदियों में न सिर्फ़ मानव-मस्तिष्क को एक साथ लाकर सभ्यता के विकास की नयी इबारत लिखी थी, बल्कि एक-दूसरे से अलग-थलग पड़े समाजों को एक साथ लाने में भी भूमिका निभाई थी। कोविड-19 के बाद दुनिया में कार्यालयों और शिक्षण संस्थानों के मौजूदा स्वरूप के ख़त्म हो जाने या सीमित हो जाने का अंदेशा पैदा हो गया है।[5] देशों के बीच तनाव बढ़ रहा है और विश्व-व्यापार में कमी दर्ज की जा रही है, जिसके कारण भूमण्डलीकरण के सीमित होने तथा स्थानीयकरण के बढ़ने की प्रवृत्ति ज़ोर पकड़ रही है। ज़ाहिर है कि इस प्रकिया से नागरिक जीवन में माँग और आपूर्ति का भयावह असंतुलन और अराजकता का सृजन होगा, और इस स्थानीयता में पहले की तरह गहरे सामाजिक बंधन भी नहीं होंगे।

जब इतने परिवर्तन होंगे, तो स्वाभाविक रूप से मौजूदा उदारतावादी लोकतंत्र इनके दबाव को नहीं झेल पाएगा। लोकतंत्र की इस प्रणाली का जन्म जिन परिस्थितियों में हुआ था, उनके बदल जाने के बाद राजनीतिक व्यवस्था में भी परिवर्तन अवश्यम्भावी होगा। ऐसे में, सम्भव है कि निरंकुशता और वंशवाद पर आधारित कोई प्रणाली, या एक नंगा कॉरपोरेट लोकतंत्र मौजूदा राजनीतिक व्यवस्था

[5] कैथरीन निक्से (2020), 'डेथ ऑफ़ ऑफ़िस', *द इकॉनोमिस्ट*, 1843 (द्वैमासिक), 29 अप्रैल.

का स्थान लेने की कोशिश करे। कोविड–19 के कारण लगे प्रतिबंधों से दुनिया के 'सुपर रिच' की सम्पत्ति में बेतहाशा वृद्धि हो रही है, और यह आशंका निर्मूल नहीं है कि वृद्धि की यह गति आगे भी बरक़रार रह सकती है। उनकी रुचि भी ऐसी ही किसी राजनीतिक व्यवस्था में होगी, जिसका उन्हें बार–बार प्रबंधन करने की आवश्यकता न पड़े। भारत समेत दुनिया के कई देशों में लोकतंत्र और उदारतावादी राज्य की अवधारणा संकट में है। निरंकुश, सर्वसत्तावादी तथा नागरिकों के प्रति जवाबदेही से विहीन राजनीतिक–शैली के अस्तित्व में आने का ख़तरा मँडराने लगा है।

यह देखना एक त्रासद अनुभव है कि जिस कोविड–19 के भय से मानव इतिहास के सबसे बड़े परिवर्तनों में से एक के घटित होने की आशंका है, वह भय बेहद अनुपातहीन और अतिरेकपूर्ण है। इस बात के भी कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हो पा रहे हैं कि इन प्रतिबंधों से वायरस के संक्रमण या इससे होने वाली कथित मौतों को रोका जा सकता है। बेलारूस, निकारागुआ, तुर्की, स्वीडन, नार्वे, तंजानिया, स्वीडन, जापान आदि अनेक देशों ने डब्ल्यूएचओ की प्रत्यक्ष और परोक्ष सलाहों तथा मीडिया द्वारा बार–बार लानत–मलामत किये जाने के बावजूद या तो बिल्कुल लॉकडाउन नहीं किया, या फिर बहुत हल्के प्रतिबंध रखे। इनमें से किसी देश में कहीं अधिक मौतें नहीं हुई हैं। यह सही है कि बड़ी संख्या में लोगों के कोरोना–संक्रमण की पुष्टि हो रही है; लेकिन उससे बड़ा सच यह है कि यह वायरस उन संक्रमित लोगों में से अधिकांश लोगों को 'बीमार' तक कर पाने में सक्षम नहीं है। संक्रमित लोगों में अधिकांश 'एसिम्पटोमैटिक' हैं, उन्हें सरकारों और अन्य संस्था केंद्रों द्वारा 'कोविड–19 के मरीज़' के रूप में प्रचारित करना, अपने नागरिकों से ऐसा विश्वासघात है, जिसकी मिसाल मिलना कठिन है।

संक्रमित लोगों में ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम है, जिन्हें कोरोना वायरस से होने वाली बीमारी के हल्के लक्षण भी उभरते हों, गम्भीर लक्षण वालों की संख्या तो और भी कम है। इस महामारी की मृत्युदर नगण्य है। यहाँ तक कि अगर कोविड–19 से पीड़ित व्यक्ति में पहले से कोई गम्भीर बीमारी न हो तो इसकी मृत्यु दर लगभग शून्य है। कोविड–19 जानलेवा नहीं है, बल्कि मनुष्य को परेशान करने वाली अधिकांश बीमारियों की तुलना में यह शारीरिक रूप से भी बहुत कम पीड़ादायक है। बल्कि सच यह है कि जैविक महामारी की आड़ में भय, भूख, भ्रष्टाचार, तकनीकी निगरानी और सर्वसत्तावाद की महामारी सभी दिशाओं में पाँव पसार रही है।

कोरोना : एक हालिया इतिहास

विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) को पहली बार 31 दिसम्बर, 2019 को चीन के वुहान में किसी अज्ञात कारण से निमोनिया जैसे लक्षण वाली बीमारी फैलने की जानकारी मिली थी। इससे पीड़ित होने वालों में ज़्यादातर स्थानीय सी–फ़ूड मार्केट के दुकानदार और संबंधित वितरक आदि थे। डब्ल्यूएचओ ने दस जनवरी को इसे एक नये प्रकार के कोरोना वायरस से हो रही बीमारी के रूप में चिह्नित किया और 30 जनवरी को 'अंतर्राष्ट्रीय चिंता का सार्वजनिक स्वास्थ्य आपात्काल' घोषित किया। 30 जनवरी तक चीन में इस वायरस से पीड़ित लोगों की संख्या लगभग आठ हज़ार थी, और दुनिया के अन्य 18 देशों में महज 83 मरीज़ मिले थे। 30 जनवरी को ही भारत के केरल में वुहान से लौटे एक विद्यार्थी के इस नये कोरोना वायरस से संक्रमित होने की पुष्टि हुई।[6] डब्ल्यूएचओ ने 11 फ़रवरी को इसका नामकरण करते हुए इसे कोरोना वायरस–2 से होने वाली बीमारी 'कोविड–19' कहा तथा 11 मार्च को इसे वैश्विक महामारी घोषित किया। इस समय तक दुनिया के 114 देशों में कोविड–19 के एक लाख अठारह हज़ार मरीज़ हो गये थे,[7] जिनमें से लगभग 81 हज़ार अकेले चीन

[6] https://pib.gov.in/PressReleseDetail.aspx?PRID=1601095

[7] https://www.who.int/dg/speeches/detail/who-director-general-s-opening-remarks-at-the-media-briefing -on-covid-19---11-march-2020

में थे। इस समय तक दुनिया में कुल 4,291 लोग इस बीमारी से मरे थे, जिनमें से 3,161 मौतें सिर्फ़ चीन में, अधिकांश वुहान और उसके आसपास हुई थीं।[8] लेकिन बीमारी चीन से निकल कर युरोप के कुछ सम्पन्न देशों में पहुँची थी। ईरान के अपवाद को छोड़ दें, तो उस समय तक यह युरोप के बाहर बहुत कम फैली थी।

इन पंक्तियों को लिखे जाने तक विश्व स्वास्थ्य संगठन को वायरस की सूचना मिले आठ महीने से अधिक समय बीत चुका है और कोविड-19 पूरी दुनिया में फैल चुका है। इस दौरान भारत समेत विश्व के अधिकांश देशों में लॉकडाउन जैसी कार्रवाइयाँ की गयीं। इससे करोड़ों लोग बेरोज़गार हो गये और लाखों लोग लॉकडाउन से उत्पन्न मुसीबतों के कारण मर गये। दुनिया के अधिकांश देशों की अर्थव्यवस्था तबाह हो गयी। हज़ारों लोग मानसिक तनाव और आर्थिक दबाव के कारण आत्महत्या कर चुके हैं। इस समय दुनिया कितने भयावह दौर से गुज़र रही है, इसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि लॉकडाउन के कारण कमज़ोर हो चुकी स्वास्थ्य-व्यवस्था और कुपोषण के कारण दुनिया के निम्न और मध्यम आय वाले देशों में अगले छह महीने तक हर रोज़ 6,000 अतिरिक्त बच्चों की मौत की आशंका है। यानी, अगले छह महीने में पाँच साल से कम उम्र के लगभग 12 लाख ऐसे बच्चे मारे जाएँगे, जिन्हें आसानी से बचाया जा सकता है।[9] इसके अलावा, इस साल का अंत आते-आते दुनिया में हर रोज़ छह से बारह हज़ार लोग भूख से मारे जाएँगे।[10]

भारत का हाल और भी बुरा होने की आशंका है। भारत की 200 लाख करोड़ (दो ख़रब) की अर्थव्यवस्था लॉकडाउन में घट कर 130 लाख करोड़ की रह गयी है। जीएसटी का एकत्रीकरण महज़ 10 प्रतिशत रह गया है। लॉकडाउन के बीच अर्थव्यवस्था 25 प्रतिशत के स्तर पर काम कर रही है। अप्रैल, 2020 तक संगठित और असंगठित क्षेत्र को मिला कर 20-22 करोड़ नौकरियाँ जा चुकी थीं। आने वाले समय में सरकार के पास अपने कर्मचारियों को अगले कुछ महीनों तक वेतन देने लायक़ भी पैसा नहीं होगा।[11] इन कारणों से भारत में कितनी मौतें होंगी, इसका कोई अध्ययन अभी तक उपलब्ध नहीं है। लेकिन, भारत के 12 राज्यों में किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार आर्थिक गतिविधियाँ बाधित होने के कारण 68 प्रतिशत लोगों को उतना भोजन नहीं मिल रहा है, जितना वे पहले खाते थे। इनमें से 25 प्रतिशत लोगों को खाने के लिए दूसरों के सामने हाथ पसारना पड़ रहा है। 22 प्रतिशत लोगों को इस दौरान कुछ न कुछ सम्पत्ति बेचनी पड़ी है, और 16 प्रतिशत लोगों को दूसरों से उधार लेना पड़ा है। भूख का वायरस भारत के पिछड़े क्षेत्रों के साथ-साथ महानगरों में भी पाँव पसार रहा है और देश भुखमरी के एक विशाल हॉट-स्पॉट के रूप में उभर रहा है।[12]

डब्ल्यूएचओ के आँकड़ों के अनुसार, पिछले आठ महीनों में दुनिया में लगभग दो करोड़ लोगों को कोरोना वायरस-2 संक्रमण हुआ है और लगभग सात लाख लोगों की मौत हो चुकी है। अधिक मौतें दुनिया के सम्पन्न युरोपीय देशों और अमेरिका में हुई हैं। भारत में लगभग 15 लाख लोगों को संक्रमण हुआ है, जबकि लगभग 35 हज़ार लोगों की मौत हो चुकी है।[13] किसी भी अन्य बीमारी की तरह यह संख्या समय के साथ-साथ बढ़ेगी लेकिन, क्या कोविड-19 के ये आँकड़े उन कार्रवाइयों

---

[8] https://www.aa.com.tr/en/asia-pacific/death-toll-in-china-from-coronavirus-reaches-3-161/1761582

[9] https://www.unicef.org/press-releases/covid-19-devastates-already-fragile-health-systems-over-6000-additional-children

[10] ऑक्सफ़ेम मीडिया ब्रीफ़िंग, *द हंगर वायरस : हाउ कोविड-19 इज़ फ़्यूलिंग हंगर इन अ हंगरी वर्ल्ड*, 9 जुलाई, 2020.

[11] https://www.workersunity.com/news/physical-deficit-reaches-34-of-gdp-economy-went-in-depression-say-pro-arun-kumar/

[12] https://timesofindia.indiatimes.com/india/nearly-half-of-rural-households-eating-fewer-items-less-number-of-times-to-overcome-covid-crisis-survey/articleshow/75703178.cms

[13] https://www.worldometers.info/coronavirus/?

को वाजिब ठहराने की इजाज़त देते हैं, जिनसे इन दिनों दुनिया गुज़र रही है? इस प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए इस नयी और अब तक ला-इलाज बीमारी की भयावहता का तर्कसंगत आकलन ज़रूरी है। इसके लिए लेख के आरम्भिक हिस्से में हम इस महामारी से संबंधित आँकड़ों के संकलन की पद्धति पर ग़ौर करेंगे। परिस्थिति को थोड़ा नज़दीक से समझने के लिए हम पूरे लेख में भारत के उदाहरणों को केंद्र में रखते हुए वैश्विक तथ्यों, आँकड़ों और विभिन्न तर्कों-वितर्कों के बीच आवाजाही करेंगे। हम उस शब्दाडम्बर का संज्ञान नहीं लेंगे, जिन्हें समाचार-माध्यमों द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है। साथ ही हम अंग्रेज़ी चिकित्सा-विज्ञान के सर्वकालिक और सर्वकल्याणकारी होने के दावों से अप्रभावित रहने और मनुष्य को मनुष्य बनाने वाली आज़ादी, गरिमा, उल्लास आदि के विरोध में जाने वाली प्रविधियों को रेखांकित करने की कोशिश करेंगे। हमारी यह भी कोशिश होगी कि विशाल कॉरपोरेट संस्थानों के अनुदान से इंटरनेट पर सक्रिय कथित 'फ़ैक्ट चेकिंग' संस्थाओं द्वारा की जा रही बमबारी से भी अधिकाधिक बचे रहें।

कोविड-19 के आँकड़े

किसी संक्रामक बीमारी के प्रसार और उसके असर को समझने के लिए महामारी-विज्ञान के पास कुछ विशेष प्रकार के पैमाने रहे हैं। इनमें मुख्य हैं, संक्रमण फैलने की दर (बेसिक रिप्रोडक्शन रेश्यो यानी आर फ़ैक्टर), संक्रमित हुए कुल व्यक्तियों की अनुमानित संख्या के बीच मृत्यु-दर (इंफ़ेक्शन फ़र्टिलिटी रेट यानी आईएफ़आर), जिन लोगों में संक्रमण की पुष्टि हो चुकी है, उनकी मृत्यु की दर (केस फ़र्टिलिटी रेट यानी सीएफ़आर) और महामारी के दौरान कुल जनसंख्या (संक्रमित और असंक्रमित को मिला कर) में हुई मृत्यु की दर (क्रूड मोर्टेलिटी रेट)।

आरम्भिक अध्ययनों में चिकित्सा-विज्ञानियों ने पाया कि कुल मामलों में केवल एक प्रतिशत से लेकर 2.3 प्रतिशत लोगों की मौत हो रही है। अनेक बीमारियों की तुलना में यह मृत्यु दर न सिर्फ़ कम थी, बल्कि कोविड-19 केवल घातक रोगों से पीड़ित काफ़ी बुज़ुर्ग लोगों के लिए ही ख़तरा बन रहा था। स्वस्थ लोगों पर इसका असर नगण्य दिख रहा था। यही कारण था कि अमेरिका के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प ने इसे 'मुश्किल से फ़्लू लगने जैसा' क़रार दिया। ट्रम्प के अतिरिक्त इटली, ब्रिटेन, ईरान, स्पेन, मैक्सिको, ब्राज़ील, स्वीडन, निकारागुआ समेत अनेक देशों के राष्ट्राध्यक्षों ने भी इसे गम्भीरता से नहीं लिया।[14]

विभिन्न शोधकर्ताओं द्वारा कोविड-19 की मृत्यु दर को कम आँकने से नाराज़ डब्ल्यूएचओ के डायरेक्टर जनरल टेड्रोस अदनोम घेब्रेयसस, जो 'डॉ. टेड्रोस' के नाम से जाने जाते हैं, ने तीन मार्च को अपनी प्रेस ब्रीफ़िंग में कहा कि कोविड-19 को लू जैसा कहना ग़लत है। फ़्लू की मृत्यु दर एक प्रतिशत से भी कम होती है, जबकि कोविड-19 के मामलों में मृत्यु की दर 3.4 प्रतिशत है। उन्होंने बताया कि कोविड-19 के संक्रमण संबंधित आँकड़े जमा करने के लिए डब्ल्यूएचओ ने प्रोटोकॉल विकसित किया है तथा सभी देशों को इन्हीं प्रोटोकॉलों पर आधारित अध्ययन करने और अपना डेटा डब्ल्यूएचओ के साथ साझा करने के लिए कहा जा रहा है।[15] लेकिन जैसे-जैसे कोविड-19 रोगियों की संख्या बढ़ी, विभिन्न अध्ययनों से यह स्पष्ट होने लगा कि कोरोना की मृत्यु दर सचमुच बहुत कम है। कुछ जगहों पर तो सीएफ़आर मात्र 0.7 प्रतिशत थी।[16] लेकिन, जून में फिर कहा गया कि कोविड-

---

[14] https://www.businessinsider.in/politics/news/8-times-world-leaders-downplayed-the-coronavirus-and-put-their-countries-at-greater-risk-for-infection/articleshow/75098090.cms

[15] https://www.who.int/dg/speeches/detail/who-director-general-s-opening-remarks-at-the-media-briefing-on-covid-19---3-march-2020

[16] https://www.medrxiv.org/content/medrxiv/early/2020/04/02/2020.03.31.20048397.full.pdf

19 का सीएफ़आर पाँच से ले कर सात प्रतिशत के बीच हो गया है।[17] हालाँकि यह मृत्यु दर भी अन्य बीमारियों की तुलना में काफ़ी कम साबित होती है। दूसरी ओर, कोविड–19 की विभिन्न प्रकार की मृत्यु दर से संबंधित चिकित्सा विज्ञानियों व संस्थाओं के निष्कर्ष इतने अलग–अलग रहे हैं कि उनसे कोई पुख़्ता निष्कर्ष निकालना बहुत कठिन है।[18] जुलाई आते–आते नये शोधों से पता लगा कि इसकी मृत्यु दर महज़ 0.1 प्रतिशत है।[19]

ये निष्कर्ष इतने अलग–अलग क्यों हैं, इसे समझने के लिए इन आँकड़ों को जमा करने की उन पद्धतियों (प्रोटोकॉल) पर ग़ौर करना आवश्यक है, जिसे डब्ल्यूएचओ ने अपने सभी 180 सदस्यों से अपनाने की अपेक्षा की है। सम्भव है कि ये पद्धतियाँ चिकित्सा–जगत के लिए वैश्विक स्तर पर समरूप आँकड़े जमा करने के लिए उपयोगी हों, लेकिन मानव–जीवन पर इनके प्रभाव के आईने में देखने पर कुछ और ही तस्वीर नज़र आती है।

मरीज़ और मृतक की पहचान

साधारण समझ कहती है कि अगर किसी व्यक्ति को कोरोना का संक्रमण हो जाए और परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो जाए, तो उसे ही कोविड–19 से हुई मौत समझा जाना चाहिए। लेकिन ऐसा है नहीं। कोरोना का मरीज़ किसे माना जाए और किसे कोविड–19 के मृतकों में गिना जाए, इसे लेकर दो मुख्य परिभाषाएँ हैं। एक परिभाषा डब्ल्यूएचओ की है जिसके तहत लक्षणों और अनुमानों के आधार पर कोविड–19 के मामलों को गिनती की जाती है। अमेरिका के साथ–साथ तीसरी दुनिया के अनेक

---

[17] https://www.businessinsider.in/science/news/scientists-predicted-that-the-coronavirus-death-rate-would-fall-over-time-but-instead-it-doubled-heres-why-it-now-hovers-at-6-/articleshow/76312092.cms

[18] https://science.thewire.in/the-sciences/covid-19-pandemic-case-fatality-rate-calculation/

[19] डॉजॉनली (2020), 'हाउ स्ट्रॉन्ग वाज़ द साइंटिफ़िक एडवाइज़ बिहाइंड द लॉकडाउन', *द स्पेक्टेटर*, 11 जुलाई.

देश इसी तरीक़े का उपयोग कर रहे हैं। युरोप के बेल्जियम, कनाडा, फ्रांस और जर्मनी जैसे देशों में भी इसी तरीक़े का प्रयोग किया जा रहा है। दूसरी परिभाषा के अनुसार लक्षणों के आधार पर कोविड-19 के मरीज़ों का निर्धारण किया जाता है ताकि उनकी बेहतर देखभाल की जा सके, लेकिन कोविड-19 से मौत उसी को माना जाता है जिसमें टेस्ट रिज़ल्ट पॉजिटिव आया हो। इसका उपयोग इटली, स्पेन, ब्रिटेन, नीदरलैंड, ऑस्ट्रिया आदि में हो रहा है।[20] कुछ देश इन दोनों परिभाषाओं के बीच पेण्डुलम की तरह झूल रहे हैं, जिनमें से एक भारत भी है। डब्ल्यूएचओ की दिशा-निर्देशिका[21] कोविड-19 के आँकड़ों को इस प्रकार दर्ज किये जाने पर बल देती है कि कोई भी सम्भावित मरीज़ छूटे नहीं; भले ही उनकी संख्या कितनी भी बढ़ जाए। डब्ल्यूएचओ की 'कोविड-19 से मृत्यु की परिभाषा' कहती है कि 'निगरानी के उद्देश्य से' इन आँकड़ों में लक्षणों पर आधारित उन सभी मौतों को गिना जाए, जिनमें कोविड-19 के अतिरिक्त किसी और कारण से मरने के 'स्पष्ट' प्रमाण न हों (जैसे सड़क दुर्घटना, कैंसर आदि), चाहे मरीज़ की जाँच हुई हो, अथवा न हुई हो, चाहे जाँच की रिपोर्ट निगेटिव ही क्यों न आयी हो।[22]

पद्धति के अंतर्निहित कारण

डब्ल्यूएचओ द्वारा किसी बीमारी से हुई मृत्यु को दर्ज करने की यह पद्धति मृत्यु के कारणों का अध्ययन करने के बजाय उनके समरूप आँकड़े जमा करने पर ज़्यादा ज़ोर देती है। यह बीमारी के ठोस कारण या उसके ठोस निदान की तलाश की नहीं, बल्कि ठोस आँकड़ों को जमा करने की पद्धति है। इस पद्धति में डब्ल्यूएचओ द्वारा निर्धारित मृत्यु के एक अंतर्निहित कारण को इस प्रकार रखा जाता है, जिससे 'रोगों के अंतर्राष्ट्रीय सांख्यिकीय वर्गीकरण' में आसानी हो। डब्ल्यूएचओ द्वारा इस संबंध में जारी दस्तावेज़ कहता है कि चिकित्सकों द्वारा मौत के लिए ज़िम्मेदार बताए गये कई कारणों में से एक का चयन इसलिए किया जाता है, ताकि 'मौतों के आँकड़ों को वर्गीकृत करने में सुविधा रहे तथा मृत्यु के कारण के संबंध में सांख्यिकीय जानकारी का विकास'[23] अबाधित रहे। इससे चिकित्साशास्त्रियों को 'एक विशेष आबादी में मौत की दर को मापने, रुझानों की निगरानी या भौगोलिक क्षेत्रों में मृत्यु के कारणों की तुलना करने में सुविधा होती है।'[24] यह 'सुविधा ही' इसका असली उद्देश्य है।

सामान्यत: यह बात एक चिकित्सक ही बेहतर तरीक़े से बता सकता है कि उसके मरीज़ की मृत्यु का क्या कारण था। उसे यह भी बेहतर अनुमान होता है कि उसके क्षेत्र में किन बीमारियों का प्रकोप है तथा ज़्यादातर मामलों में लोगों की असमय मौत की वजहें क्या हैं। लेकिन डब्ल्यूएचओ आँकड़ों के संकलन के लिए चिकित्सकों की राय पर भरोसा नहीं करता। चिकित्सकों को पहले से ही निर्धारित प्रारूप उपलब्ध करवाया जाता है, जिसमें उन्हें पूर्व निर्धारित प्रोटोकॉल के अनुसार सूचनाएँ भरनी होती हैं। पिछले कुछ वर्षों से इसके लिए एक 'मेडिकल एंटिटी का स्वचालित वर्गीकरण' नामक सॉफ़्टवेयर का भी इस्तेमाल किया जाता रहा है। चिकित्सकों को उसमें सिर्फ़ मरीज़ से संबंधित सूचनाएँ डालनी होती हैं। सॉफ़्टवेयर में पहले से ही निर्धारित कोड सूचनाओं के आधार पर 'मृत्यु के अंतर्निहित कारण' निर्धारित कर लेता है। इस पद्धति का मुख्य अवगुण सिर्फ़ यही नहीं है कि यह मनुष्य की मौत को एक डेटा में बदल देता है, बल्कि उस डेटा को उत्पन्न करने की पद्धति में चिकित्सा जगत के

[20] https://analysis.covid19healthsystem.org/index.php/2020/06/04/how-comparable-is-covid-19-mortality-across-countries/

[21] https://www.who.int/emergencies/diseases/novel-coronavirus-2019/situation-reports

[22] https://www.who.int/classifications/icd/Guidelines_Cause_of_Death_COVID-19.pdf

[23] https://www-doh.state.nj.us/doh-shad/view/sharedstatic/UnderlyingCauseOfDeath.pdf

[24] वही.

02pramod:Layout 1 9/16/2020 3:19 PM Page 21

शोधकर्ताओं की सुविधा व अन्य निहित व्यावसायिक हितों के लिए फेरबदल भी किया जा सकता है।

कोविड–19 से हुई मौतों का निर्धारण करने के लिए इसे वैश्विक महामारी घोषित करने के तुरंत बाद डब्ल्यूएचओ ने आपात बैठक बुलाकर मौतों के वर्गीकरण की इस पद्धति में कोविड–19 के लिए 07.1 और 07.2 नामक दो विशेष नये कोड जोड़े। कोड 07.1 उन मौतों के लिए है, जिनमें कोविड–19 का वायरस मिला हो, जबकि कोड 07.2 उन मौतों को सम्भावित, संदिग्ध, लक्षण आधारित बता कर दर्ज करता है, जिनमें वायरस नहीं मिला है।[25] ऐसे ही दिशा–निर्देश अमेरिका के राष्ट्रीय जन स्वास्थ्य संस्थान, रोग नियंत्रण एवं बचाव केंद्र (सीडीसी) ने भी जारी किये।[26] मौतों के वर्गीकरण की इस पद्धति में उपरोक्त बदलाव के कारण कोविड–19 को मौत का 'अंतर्निहित कारण' बताने वाले आँकड़े तेज़ी से बढ़े। जर्मन अर्थशास्त्री और मीडिया समीक्षक मैक्स रोज़र द्वारा स्थापित ऑनलाइन सूचना–स्रोत 'अवर वर्ल्ड इन डेटा' पर कोविड–19 की मृत्यु दर से संबंधित चार्ट और ग्राफ़ में तारीख़ों पर ध्यान देने से पता लगता है कि उपरोक्त दिशा–निर्देश जैसे–जैसे अमल में आते गये, वैसे–वैसे मृत्यु दर का ग्राफ़ भी बढ़ता गया।[27]

अनेक चिकित्सकों व राजनीतिज्ञों ने इन दिशा–निर्देशों का विरोध किया है, जिनमें अमेरिका के मिनिसोटा के दो सीनेटर स्कॉट जेंसेन और जिम एबेलर शामिल हैं। स्कॉट जेंसेन स्वयं चिकित्सा–क्षेत्र के जाने–माने नाम हैं। वे युनिवर्सिटी ऑफ़ मिनिसोटा मेडिकल स्कूल में प्राध्यापक रहे हैं। उन्होंने फ़ेसबुक पर लिखा कि सीडीसी की गाइड–लाइन मौतों के आँकड़े बढ़ने के लिए ज़िम्मेदार है। इसके पीछे आर्थिक उद्देश्य हैं,[28] जबकि जिम एबेलर ने ट्विटर पर कहा कि मृत्यु प्रमाण–पत्र में अन्य बीमारियों से मरे लोगों को भी कोविड–19 से मृत क़रार देने के लिए डॉक्टरों को कोचिंग दी जा रही है। उनका इशारा कोविड–19 के लिए जारी इसी नयी कोडिंग के बारे में डॉक्टरों को दिये जा रहे प्रशिक्षण की ओर था। उन्होंने कहा कि मृत्यु प्रमाण–पत्र में मौत का क्या कारण लिखा जाना है, इसके लिए डॉक्टरों को इतनी गहन कोचिंग कभी नहीं दी गयी।[29] डगलस काउंटी के राज्य–प्रतिनिधि मार्क बैस्ली ने भी ऐसा ही आरोप लगाते हुए मामले की जाँच के लिए न्यायालय में अर्ज़ी दी। उनका कहना था कि राज्य का स्वास्थ्य विभाग डॉक्टरों द्वारा बताए गये मौत के असली कारण को बदल कर 'कोविड' कर दे रहा है। वह भी तब, जबकि रोगी की टेस्ट रिपोर्ट कोविड–19 निगेटिव थी। उन्होंने न्यायालय में दिये गये अपने आवेदन में कहा कि रोगी की निगरानी करने वाले डॉक्टर द्वारा निर्धारित मौत के कारण को बदलने के लिए ऐसी तत्परता कभी नहीं देखी गयी; स्वास्थ्य विभाग इस बदलाव का कारण भी नहीं बता रहा है। उनके आरोप के उत्तर में राज्य के स्वास्थ्य विभाग के अधिकारियों ने समाचार–माध्यमों को दिये बयान में कहा कि ऐसा वे अपने मन से नहीं कर रहे हैं, बल्कि सीडीसी के निर्देशों का पालन कर रहे हैं।[30] बाद में न्यायालय ने भी उनके आरोपों को ख़ारिज कर दिया, क्योंकि चिकित्सकों द्वारा जारी किये जा रहे प्रमाण–पत्र दिशा–निर्देशों के अनुरूप थे तथा एक भी डॉक्टर ने यह स्वीकार नहीं किया कि इसके लिए उन पर किसी प्रकार का दबाव बनाया गया था।[31]

कई देशों में इन दिशा–निर्देशों का पालन नहीं करने वाले डॉक्टरों पर मुक़दमा भी दर्ज किया जा

---

[25] https://www.who.int/classifications/icd/COVID-19-coding-icd10.pdf?ua=1

[26] https://www.cdc.gov/nchs/data/nvss/coronavirus/Alert-2-New-ICD-code-introduced-for-COVID-19-deaths.pdf

[27] https://ourworldindata.org/mortality-risk-covid

[28] https://www.facebook.com/permalink.php?story_fbid=1089063181492669&id=100011669915702

[29] https://twitter.com/jimabeler/status/1247169451553931266

[30] https://www.9news.com/article/news/local/next/gop-rep-alleges-falsified-covid-19-records-calls-for-indictment-of-colorados-top-health-official/73-bf02452f-4615-4efe-9413-a4826a8105b2

[31] https://twitter.com/KyleClark/status/1270379275380649984

रहा है। मैक्सिको में अपने मरीज़ों की मौत का कारण श्वसन–तंत्र की विफलता, एपिटकल निमोनिया और वायरल निमोनिया बताने वाले दस डॉक्टरों पर मुक़दमा दर्ज किया गया है। मैक्सिको सिटी के मेयर का कहना है कि इन डॉक्टरों ने महामारी के दौरान जारी किये गये उन दिशा–निर्देशों का उल्लंघन किया है, जिनके अनुसार उन्हें इन मौतों का अंतर्निहित कारण कोविड–19 ही बताना था, भले ही उनका टेस्ट न हुआ हो, या निगेटिव रहा हो। हालाँकि मैक्सिको पुलिस को समझ नहीं आ रहा है कि इन डॉक्टरों पर कौन–सी धाराएँ लगाई जाएँ? क़ानून के अनुसार तो डॉक्टर ही अपने मरीज़ की मृत्यु का कारण निर्धारित करने के लिए ज़िम्मेदार माने जाते हैं।[32]

भारत में डब्ल्यूएचओ के दिशा–निर्देश

भारत में इंडियन काउंसिल ऑफ़ मेडिकल रिसर्च (आईसीएमआर) ने 11 मई को अपनी गाइड–लाइन 'भारत में कोविड–19 से संबंधित मौतों की उपयुक्त रिकॉर्डिंग के लिए मार्गदर्शन' शीर्षक से जारी की है। भारत के अस्पतालों में इसी का पालन किया जा रहा है। इसका अधिकतर हिस्सा डब्ल्यूएचओ के दिशा–निर्देशों पर आधारित है। इस गाइड–लाइन के अनुसार, ऐसी मौतें जिनमें कोविड–19 के टेस्ट के परिणाम अस्पष्ट आये हों, प्रतीक्षित हों या फिर निगेटिव ही क्यों न हों, लेकिन अगर उनमें 'कोविड–19 के कोई लक्षण' मौजूद रहे हों, तो उन्हें उसे 'क्लीनिकली एपीडिमियोलॅजिकली डायग्नोज़्ड' रूप से कोविड–19 से हुई मौत के रूप में गिना जाएगा।[33]

डब्ल्यूएचओ द्वारा जारी कोविड–19 के लक्षणों की एक लम्बी फ़ेहरिस्त है। इनमें बुख़ार, खाँसी, थकान, साँस लेने में दिक़्क़त, बलगम, मांसपेशियों में दर्द, सर में दर्द, खुजली, आँख आना, नाक बहना, गले में ख़राबी और दस्त (डायरिया), सजगता और गतिशीलता की कमी, भूख न लगना, अचेत होना, बोलने में दिक़्क़त होना आदि अनेक चीज़ें शामिल हैं।[34] इस सूची में नये अध्ययनों के अनुसार नये–नये लक्षण निरंतर जोड़े जा रहे हैं। अप्रैल के अंतिम सप्ताह में अमेरिका के राष्ट्रीय जन स्वास्थ्य संस्थान, रोग नियंत्रण एवं बचाव केंद्र (सीडीसी) ने इनमें गंध और स्वाद के ख़ात्मे और ठण्ड से कँपकँपी समेत छह लक्षण जोड़े थे।[35] फ़ॉक्स न्यूज़ की एक रिपोर्ट के अनुसार, सीडीसी ने अपनी सूची में 13 मई को जी मिचलाने और उलटी समेत तीन और लक्षण 'चुपचाप जोड़ दिये थे।[36] इन संस्थाओं द्वारा कोविड–19 के नये लक्षण जोड़े जाने के बाद भारत समेत अनेक देशों की स्वास्थ्य संस्थाएँ उन्हें अपने देशों के लिए जारी किये जाने वाले दिशा–निर्देशों में शामिल कर लेती हैं।[37]

इसी वैश्विक परिघटना के आधार पर भारत में इंडियन काउंसिल ऑफ़ मेडिकल रिसर्च की उपरोक्त गाइड–लाइन[38] के अनुसार मृतक की टेस्ट रिपोर्ट पॉजिटिव आना भी आवश्यक नहीं है। अगर टेस्ट रिपोर्ट निगेटिव आती है, लेकिन मृतक में कोई भी ऐसा लक्षण रहा हो, जो कोविड–19 के लक्षणों से मिलता–जुलता हो, तो उसे कोविड–19 से सम्भावित मृत्यु के रूप में दर्ज किया जाता है। कोविड–19

---

[32] https://www.dailymail.co.uk/news/article-8393249/Ten-private-doctors-government-official-falsified-500-death-certificates.html

[33] https://www.thehindu.com/news/national/icmr-issues-guidance-for-appropriate-recording-of-covid-19-deaths-to-create-robust-data/article31555423.ece

[34] https://www.who.int/emergencies/diseases/novel-coronavirus-2019/question-and-answers-hub/q-a-detail/q-a-coronaviruses#:~:text=symptoms

[35] https://timesofindia.indiatimes.com/life-style/health-fitness/health-news/cdc-adds-six-new-symptoms-to-the-covid-19-list-watch-out-for-these/photostory/75404734.cms

[36] https://www.foxnews.com/health/cdc-adds-3-new-coronavirus-symptoms-to-list

[37] https://www.india.com/hindi-news/india-hindi/lack-of-smell-and-taste-included-in-the-list-of-symptoms-of-covid19-says-ministry-of-health-4057212/

[38] https://www.ncdirindia.org/Downloads/CoD_COVID-19_Guidance.pdf
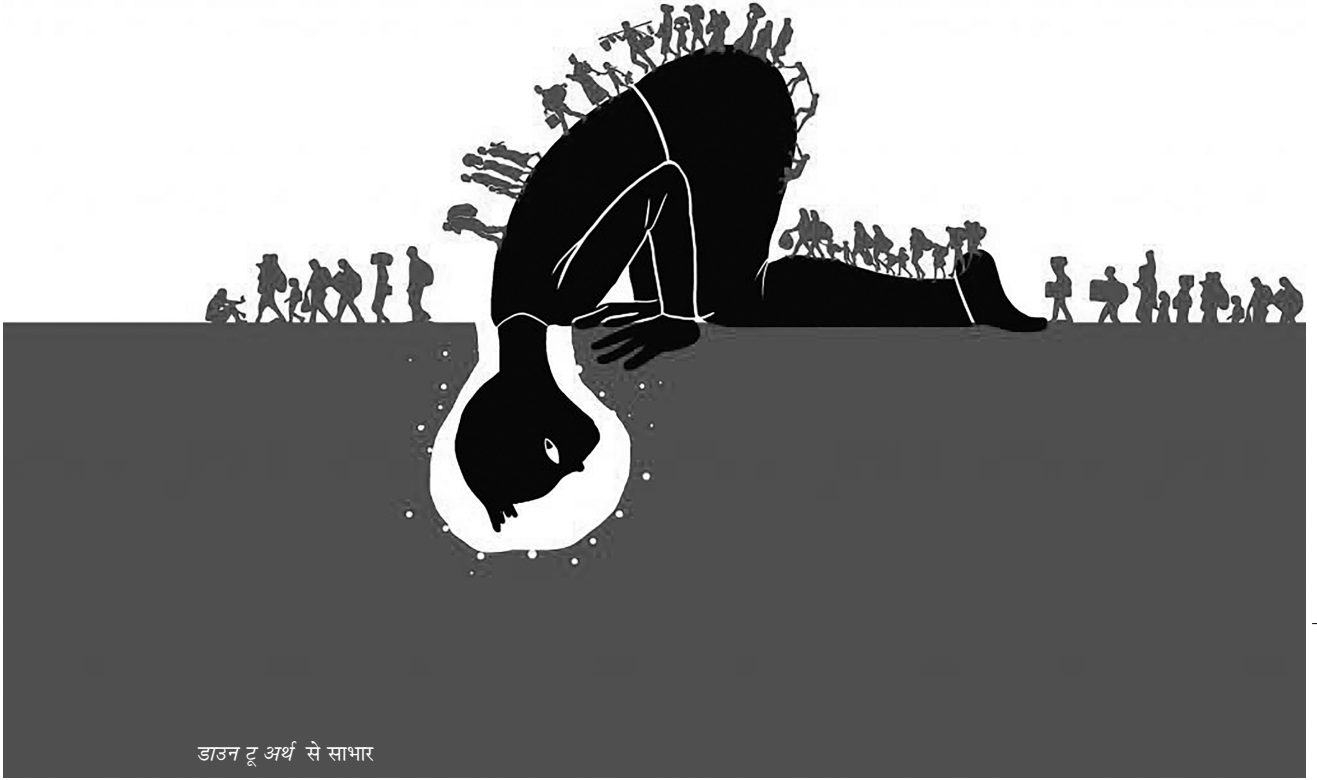
डाउन टू अर्थ से साभार

की जाँच रिपोर्ट निगेटिव रहने के बावजूद ऐसे मृतकों को, जिनमें न्यूमोनिया का कोई भी लक्षण हो (श्वसनतंत्र संबंधी कठिनाई) का सामना करना पड़ रहा हो या हृदय पर चोट या रक्त वाहिनियों में ख़ून का थक्के जमने आदि जैसे उपरोक्त दर्जनों लक्षणों में से कोई भी लक्षण रहे हों तो उन्हें कोविड-19 से 'सम्भावित' या 'संदिग्ध' मृत के रूप में दर्ज कर लिया जाता है। आईसीएमआर के मुताबिक़ अगर कोई व्यक्ति जाँच में कोविड-19 पॉजिटिव पाया जाता है और उसके बाद उसकी मौत किसी भी बीमारी से होती है, तो भी उसे कोविड-19 से हुई मौत माना जाएगा। अगर किसी व्यक्ति को कोविड-19 का संक्रमण होता है और उसके सम्पर्क में आने वाले किसी व्यक्ति की मौत होती है, तो उसे भी कोविड-19 से 'सम्भावित' मौत के रूप में गिना जाएगा, भले ही मृतक की कोरोना रिपोर्ट निगेटिव ही क्यों न आयी हो।

किस प्रकार की मौतों को कोविड-19 के रूप में दर्ज करना है, इसके उदाहरण भी आईसीएमआर की गाइड-लाइन में दिये गये हैं। एक उदाहरण देखें। किसी युवक का कोविड-19 टेस्ट पॉजिटिव आता है और कुछ समय बाद उसके 60 वर्षीय पिता की मौत हो जाती है। पिता पिछले 15 साल से मधुमेह से पीड़ित थे। पिता का कोविड-19 टेस्ट उपलब्ध नहीं था, लेकिन उसमें मौत से पहले इंफ़्लुएंजा जैसे लक्षण थे या उन्होंने मौत से पहले साँस लेने में तकलीफ़ महसूस की थी, तो ऐसी मौत को 'संदिग्ध' श्रेणी में रखते हुए कोविड-19 से होने वाली मौत के रूप में गिना जाएगा।[39]

---

[39] वही.

इसके अलावा, डब्ल्यूएचओ द्वारा निर्धारित प्रोटोकॉल का पालन करते हुए एक अन्य गाइड-लाइन आईसीएमआर द्वारा सभी राज्यों को 10 मई को 'भारत में कोविड-19 में मेडिको-लीगल शव परीक्षा के लिए मानक' शीर्षक से भी भेजी गयी है। इसमें कहा गया है कि 'एपिडिमियोलॅजिकल हिस्ट्री' के आधार पर भी मृत लोगों की पहचान 'कोविड-19 से मौत' के रूप में की जाए। इनमें वे व्यक्ति आते हैं जिन्होंने किसी ऐसी जगह की यात्रा की है जिसे कोविड-19 हॉटस्पॉट के रूप में चिह्नित किया गया हो, या ऐसी किसी जगह पर रहे हों, या हॉटस्पॉट में रहे किसी बुख़ारग्रस्त व्यक्ति से मिले हों। अगर इनमें से किसी में भी 'एपिडेमियोलॅजिकल हिस्ट्री' मौजूद हों और मरने वाले में कोविड-19 के कोई लक्षण सामने नहीं आये हों, न ही उसकी टेस्ट रिपोर्ट पॉजिटिव हों, तब भी उसे कोविड-19 से हुई मौत माना जाएगा। 'एपिडेमियोलॅजिकल हिस्ट्री' वाले व्यक्ति की मौत होने पर अगर उसमें कोविड-19 के कोई लक्षण मौजूद नहीं हैं, तब भी उन्हें संक्रमित व्यक्ति के सम्पर्क में आने और लक्षण उभरने के बीच की अवधि में मान कर 'कोविड-19' से हुई मौत के रूप में गिना जाता है। इस प्रकार सभी 'लावारिस लाशों' को भी इसी श्रेणी में रखा जाता है।[40]

आश्चर्यजनक है कि किसी अज्ञात कारण से आईसीएमआर ने अपनी वेबसाइट से इस गाइड-लाइन को हटा दिया है[41] तथा उसकी जगह तीन ईमेल पते दिये हैं, जिन पर गाइड-लाइन पाने के लिए सम्पर्क करने के लिए कहा गया है।[42] इन पंक्तियों के लेखक ने इस संबंध में आईसीएमआर द्वारा दिये गये ईमेलों पर सम्पर्क किया तो बताया गया कि वह गाइड-लाइन पुरानी थी, और सिर्फ़ एक ड्राफ़्ट की हैसियत रखती थी। इसलिए अब वह उपलब्ध नहीं है। आईसीएमआर ने अपने ईमेल में जिस नयी गाइड-लाइन का हवाला दिया, वह 15 मार्च की है;[43] जबकि उपरोक्त गाइड-लाइन 10 मई[44] की है। 15 मार्च की गाइड-लाइन का नाम 'कोविड-19 शवों के प्रबंधन के लिए दिशा-निर्देश' हैं, जबकि 10 मई की गाइड-लाइन का नाम 'भारत में कोविड-19 में मेडिको-लीगल शव परीक्षा के लिए मानक' है। इस प्रसंग से आभास होता है कि भारत सरकार डब्ल्यूएचओ द्वारा निर्धारित 'कोविड-19 के मरीज़ की परिभाषा' को तो स्वीकार कर रही है; लेकिन 'कोविड-19 से मृत्यु' की डब्ल्यूएचओ की परिभाषा को लेकर किंकर्तव्यविमूढ़ है। मृत्यु की इस परिभाषा के बूते एक ओर सत्तारूढ़ दल चाहे तो देश पर निरंकुश शासन करते हुए इसका राजनीतिक लाभ भी ले सकता है। दूसरी ओर इससे मौतों की संख्या बहुत बढ़ते हुए दिखने पर उसे जनता के क्रोध का भी शिकार होने की आशंका है। इसलिए सरकार इस मामले में अभी अपने पत्ते शायद पूरी तरह नहीं खोलना चाहती।

संयोगवश दस मई की उपरोक्त गाइड-लाइन राजस्थान सरकार के स्वास्थ्य विभाग की वेबसाइट पर इन पंक्तियों के लिखे जाने तक मौजूद है।[45] दरअसल, राजस्थान सरकार के स्वास्थ्य विभाग के अतिरिक्त निदेशक ने आईसीएमआर से प्राप्त इस गाइड-लाइन को अपने एक 'अति आवश्यक' पत्र के साथ नत्थी कर राज्य के सभी चिकित्सा अधिकारियों को भेजा है, जिसकी प्रतिलिपि विभाग की वेबसाइट पर अपलोड की गयी है। उन्होंने अपने पत्र में अधिकारियों को इस गाइड-लाइन का पालन सुनिश्चित करने का आदेश दिया है। इस गाइड-लाइन का सिर्फ़ राजस्थान में ही नहीं, बल्कि भारत के कई राज्यों में पालन हो रहा है। बंगाल की राज्य सरकार ने आरम्भ में इसका उल्लंघन किया था;

[40] https://www.newindianexpress.com/nation/2020/may/20/covid-19-testing-should-be-performed-on-dead-bodies-of-suspected-cases-rules-icmr-2145556.html

[41] https://www.icmr.gov.in/pdf/covid/techdoc/COVID19_AUTOPSY_GUIDELINES_2020_10052020.pdf

[42] https://www.icmr.gov.in/pdf/covid/techdoc/for_queries_plz_contact.pdf

[43] https://www.mohfw.gov.in/pdf/1584423700568_COVID19GuidelinesonDeadbodymanagement.pdf

[44] http://rajswasthya.nic.in/PDF/508%20Dt.12.05.2020%20Website.pdf

[45] वही.

लेकिन बाद में भारत सरकार के दबाव में बंगाल ने भी कम से कम सैद्धांतिक तौर पर मृत्यु संबंधी इन दिशा-निर्देशों को स्वीकार कर लिया है।[46] इस गाइड-लाइन में मोटे अक्षरों में कहा गया है कि 'सम्भव है कि बिना लक्षणों वाले संक्रमित लोग, इंक्यूबेशन अवधि के मरीज़, लावारिस लाशें और निगेटिव टेस्ट रिज़ल्ट के मामले में डायग्नोस्टिक तरीक़ों से सम्भावित कोविड-19 के मानदण्डों को पूरा न कर सकें, लेकिन तब भी इन सभी को कोविड-19 से हुई सम्भावित मृत्यु के रूप में ही दर्ज किया जाए, क्योंकि अपुष्ट निगेटिव परिणाम असामान्य नहीं हैं।'[47] आईसीएमआर का तर्क है वायरस के संक्रमण की जाँच के लिए जिस रिवर्स ट्रांसक्रिप्शन-पॉलिमरेज़ चेन रिएक्शन टेस्ट (आरटी-पीसीआर टेस्ट) का उपयोग किया जाता है, उसमें अपुष्ट (फ़ाल्स) निगेटिव आने की सम्भावना बहुत अधिक होती है, इसलिए इस बीमारी में जो लक्षण उभरते हैं, उसके आधार पर मरीज़ की पहचान की जाती है। इसलिए जो बेसहारा लोग सड़कों पर मर रहे हैं, उनमें भी कोविड-19 के संक्रमण की सम्भावना से इंकार नहीं किया जा सकता।

2013 में मैंने भारत की सामाजिक रूप से शोषित आबादी के मुद्दों को केंद्र में रखकर सामग्री प्रकाशित करने वाले एक छोटे मीडिया संस्थान[48] की तरफ़ से लावारिस लाशों के संबंध में विभिन्न सम्बद्ध विभागों से सूचना के अधिकार (आरटीआई) के तहत जानकारी माँगी थी। हमने अपने आरटीआई आवेदन में पूछा था कि 'दिल्ली राज्य और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (एनसीआर) में पिछले तीन वर्ष में कितनी ऐसी लाशें मिलीं, जिन्हें अज्ञात या लावारिस के रूप में चिह्नित किया गया, उन लोगों की सम्भावित उम्र व संबंधित थानों, अस्पतालों आदि के नाम सहित जानकारी दें?'

इस संबंध में शायद सरकार के पास समेकित आँकड़ा उपलब्ध नहीं था, इसलिए हमारा यह आवेदन दिल्ली-एनसीआर के सभी थानों को स्थानांतरित कर दिया गया। उसके बाद हमारे पास अलग-अलग थानों से अलग-अलग लिफ़ाफ़ों में उन थाना क्षेत्र में मिली अज्ञात लोगों की लाशों के विवरण आने लगे। हमारे पास सिविल थानों के अतिरिक्त, रेलवे थानों, अस्पतालों आदि से भी लिफ़ाफ़े आये। इनमें से कई के उत्तर 'सूचना उपलब्ध नहीं है' भी थे। विभिन्न प्रकार के उत्तरों के लिफ़ाफ़े इतने ज़्यादा थे कि हमारे लिए उन्हें सँभालना मुश्किल हो गया और अंततः हम उन आँकड़ों को समेकित रूप से प्रकाशित नहीं कर सके, क्योंकि उन्हें संसाधित और सम्पादित करने के लिए हमें और आरटीआई करने की ज़रूरत पड़ती। लेकिन हमने पाया कि दिल्ली जैसे शहर में लावारिस रूप से मरने वालों की संख्या हमारे अनुमान से बहुत ज़्यादा है। इनमें से ज़्यादातर महानगर में आने वाले पिछड़े और दलित समुदायों के कामगार, भिखारी, नशेड़ी व छोटे-मोटे अपराध कर जीवन-यापन करने वाले लोग होते हैं। सरकारी आँकड़ों के अनुसार भारत में एक साल में अमूमन 40 हज़ार लावारिस लाशें मिलती हैं; जिनमें 80 से 90 प्रतिशत की कभी पहचान नहीं हो पाती।[49] लावारिस लाशों से जुड़ा यह आरटीआई प्रकरण बताता है कि कोविड की मौतों में यह संख्या जुड़ने से कुल आँकड़े कितने भयावह हो जाते हैं।

कोविड-19 कितना जानलेवा और पीड़ादायक है?

बहरहाल, एक आवश्यक प्रश्न यह है कि क्या कोविड-19 इतना जानलेवा है कि सिर्फ़ इसके संक्रमण से स्वस्थ व्यक्ति की मौत हो जाती है? सच यह है कि एक स्वस्थ व्यक्ति के लिए यह अपने आप

---

[46]https://www.hindustantimes.com/india-news/will-follow-icmr-norms-to-audit-deaths-wb/story-aP48K4e9WSeC4jZEALVcYK.html

[47] http://rajswasthya.nic.in/PDF/508%20Dt.12.05.2020%20Website.pdf

[48] लेखक ने नयी दिल्ली से प्रकाशित ओबीसी, दलित, घुमंतू जातियों और आदिवासी मुद्दों पर केंद्रित प्रिंट पत्रिका, वेब-पोर्टल व पुस्तक प्रकाशन फॉरवर्ड प्रेस का 2011 से 2019 तक नेतृत्व किया.

[49]https://bprd.nic.in/WriteReadData/CMS/Unidentified%20Dead%20Bodies%20&%20Missing%20Persons.pdf

समाप्त हो जाने वाले सर्दी-ज़ुकाम से अधिक कुछ नहीं है। इससे संक्रमित होने वाले 80 प्रतिशत लोगों को तो इसके लक्षण तक नहीं उभरते। उन्हें कब संक्रमण हुआ और कब उनके शरीर की प्रतिरोधक क्षमता ने उसे परास्त कर दिया, इसका उन्हें पता तक नहीं चलता।[50] विभिन्न शोधों के अनुसार कोविड-19 तभी जानलेवा हो सकता है जब किसी जानलेवा बीमारी (उच्च रक्तचाप व अन्य हृदय रोग, मोटापा, किडनी की समस्या, कैंसर, एड्स आदि) के कारण किसी व्यक्ति की प्रतिरोधक क्षमता कम हो गयी हो।[51] ऐसे में प्रश्न उठता है कि लक्षणों के आधार पर (और उससे भी बढ़ कर अनुमान के आधार पर) कोविड-19 के जो आँकड़े पेश किये जा रहे हैं, उनकी विश्वसनीयता कितनी है और इनसे मनुष्य जाति को क्या लाभ या नुक़सान हो रहा है?

महामारी-विज्ञान किसी बीमारी की भयावहता को मापने के लिए उससे होने वाली शारीरिक पीड़ा के स्तर को संज्ञान में नहीं लेता, जबकि समाजशास्त्र के अध्येताओं लिए यह भी एक आवश्यक पैमाना होना चाहिए। कोविड-19 से होने वाली शारीरिक पीड़ा फ़्लू लगने से अधिक गम्भीर नहीं होती। वह भी बस कुछ दिनों के लिए; उसके बाद मरीज़ अपने आप ठीक हो जाता है। इस मामले में कोविड-19 की तुलना हाड़ कँपा देने वाली संक्रामक बीमारियों, टी.बी., डेंगू, चिकनगुनिया, मलेरिया आदि से नहीं हो सकती। यहाँ तक कि कोविड-19 से मिलते-जुलते लक्षण वाले दमा रोग की खाँसी भी मरीज़ को तोड़ कर रख देती है। कोविड-19 की तुलना प्लेग और चेचक जैसी प्राणघातक दर्दनाक बीमारियों से तो किसी पैमाने पर सम्भव नहीं है।

यह सही है कि बड़ी संख्या में लोगों को कोविड-19 के लक्षण उभर रहे हैं, जिनमें कई राजनेता, अधिकारी व अन्य गण्यमान्य लोग भी शामिल हैं। लेकिन यह देखना आवश्यक है कि उन लक्षणों की गम्भीरता कितनी है? उन लक्षणों की शारीरिक पीड़ा का स्तर क्या है? क्या यह सही नहीं है कि उनमें से अधिकांश को वास्तव में कोई लक्षण नहीं हैं। वे बीमार नहीं हैं, बल्कि उनके पास सिर्फ़ एक टेस्ट रिपोर्ट है, जिस पर पॉजिटिव लिखा है।[52] उनमें से कुछ को बहुत हल्के लक्षण हैं, लेकिन उनमें से अधिकांश स्वयं ही ठीक जाएँगे और इन लक्षणों की शारीरिक पीड़ा का स्तर भी अन्य बीमारियों के अपेक्षा बहुत नीचा है। हाँ, यह अवश्य है कि उनसे दूसरे लोगों में संक्रमण फैल सकता है। लेकिन क्या सिर्फ़ संक्रमण होना और पश्चिमी चिकित्सा-विज्ञान के पास उपचार उपलब्ध न होना अपने आप में इतनी बड़ी समस्या है, जिसके लिए विश्वव्यापी स्तर पर लॉकडाउन जैसे क़दम उठाए जाने चाहिए? हर साल करोड़ों लोगों को फ़्लू होता है। वायरस जनित यह संक्रमण भी कोविड-19 की तरह ही संक्रमित व्यक्ति के ड्रॉपलेट्स के सम्पर्क में आने से ही होता है। इससे बचने के लिए भी संक्रमित व्यक्ति से 2 गज़ (6 फ़ीट) की दूरी ज़रूरी है और यह भी कोविड-19 की ही तरह बिना-लक्षण वाले फ़्लू-कैरियर से भी फैल सकता है और अगर किसी सतह या वस्तु पर फ़्लू के वायरस के ड्रॉपलेट्स पड़े हों, तो उसे छूने और फिर अपने मुँह, नाक, या आँखों को छूने से हो सकता है।[53] शायद कम लोग जानते हैं कि फ़्लू की भी कोई मुकम्मल दवा या वैक्सीन आज तक उपलब्ध नहीं है।[54] जब कोविड-

[50] https://www.healthline.com/health-news/50-percent-of-people-with-covid19-not-aware-have-virus
[51] https://www.medrxiv.org/content/10.1101/2020.06.11.20128926v1
[52] https://www.news18.com/photogallery/tv/famous-people-who-have-tested-positive-for-coronavirus-2535363-14.html
[53]https://www.cdc.gov/flu/about/disease/spread.htm#:~:text=People%20with%20flu%20can%20spread, be%20inhaled%20into%20the%20lungs.
[54] https://my.clevelandclinic.org/health/diseases/13756--colds-and-flu-symptoms-treatment-prevention-when-to-call/management-and-treatment

19 की मृत्यु दर इतनी कम है, तो सिर्फ़ संक्रमण को लेकर ऐसी जानलेवा अफ़रा-तफ़री क्यों पैदा की जा रही है जिससे लाखों लोग मारे जा रहे हैं, और दुनिया का एक बड़ा हिस्सा आने वाले कई वर्षों तक बदहाली में जीने के लिए मजबूर हो जाने वाला है?

कितनी मौतें कोविड-19 से और कितनी प्रतिबंधों से?

कोविड-19 से हुई मौतों के बढ़े-चढ़े आँकड़ों को सामने रख कर लॉकडाउन और नागरिकों पर विभिन्न प्रकार के प्रतिबंधों को वैधता प्रदान की गयी। कहा गया कि इन प्रतिबंधों के कारण कोविड-19 के संक्रमण को आगे के लिए टाला जा सकता है, ताकि इस बीच अस्पतालों को संक्रमित मरीज़ों की भर्ती के लिए तैयार करते हुए सही वैक्सीन मिलने का धैर्यपूर्वक इंतज़ार किया जा सके। इन प्रतिबंधों के कारण समाज में भयावह घबराहट, भय और अफ़रा-तफ़री फैली है। लोग घरों में रहने के लिए विवश हो गये हैं। नतीजतन मध्यवर्ग और उच्च वर्ग के उच्च रक्तचाप, मधुमेह या/और मोटापा से पीड़ित लोगों व पहले से बीमार बुजुर्ग लोगों में तनाव का स्तर बहुत ऊँचा हो गया है। एक सर्वेक्षण के अनुसार ब्रिटेन में 75 प्रतिशत लोगों ने नींद में कमी की शिकायत की है,[55] जबकि भारत में 81 प्रतिशत लोगों का कहना है कि ये प्रतिबंध समाप्त हो जाएँ तो वे बेहतर नींद ले पाएँगे। मई के अंत तक इनमें से 33 प्रतिशत लोग बेचैनी और अवसाद जैसी गम्भीर मनोवैज्ञानिक समस्याओं से जूझ रहे हैं।[56, 57] मनोवैज्ञानिक समस्याओं से ग्रसित होने वाले लोगों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। हम अपने आसपास देख सकते हैं कि कई लोग ऐसे छोटे-छोटे कारणों से मर रहे हैं या दुर्घटनाग्रस्त हो रहे हैं, जिनके बारे में पहले सोचा नहीं जा सकता था। कोविड-19 के संक्रमण के भय और प्रतिबंधों के कारण जीविका के स्रोत ख़त्म हो जाने के कारण आत्महत्या करने वालों की संख्या जिस प्रकार बढ़ रही है, वह रोंगटे खड़ी करने वाली है। नेपाल में मार्च में शुरू हुए लॉकडाउन के बीच 1,647 लोगों ने आत्महत्या की है, जो इसी अवधि में पहले हुई आत्महत्याओं से 25 प्रतिशत ज़्यादा है।[58] भारत के राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो ने 2018 के बाद आत्महत्याओं के आँकड़े नहीं जमा किये हैं, लेकिन लॉकडाउन में अलग-अलग जगहों से जो सूचनाएँ आ रही हैं, वे दिल दहला देने वाली हैं। लॉकडाउन के दौरान लुधियाना में आत्महत्याओं में 11 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है।[59] झारखण्ड में इस दौरान हर रोज़ पाँच लोगों ने आत्महत्या की।[60] कोलकाता में इस दौरान आत्महत्या करने वालों की संख्या पिछले साल की तुलना में दुगनी रही है।[61] भारत के समेकित आँकड़े आने पर सम्भवतः हम पाएँगे कि लॉकडाउन के कारण आत्महत्या करने वालों में सबसे अधिक संख्या 1 से 1.5 लाख रुपये वार्षिक आय वाले ऐसे युवाओं की है, जिन्हें अपनी पढ़ाई हाई स्कूल के बाद छोड़ देने के लिए मजबूर होना पड़ा था और जो असंगठित क्षेत्र में कार्यरत थे। 2018 में राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो द्वारा जारी आँकड़ों

---

[55] https://sleepcouncil.org.uk/survey-reveals-covid-19-having-severe-impact-on-sleep/

[56] https://www.thehindubusinessline.com/news/variety/covid-impact-lockdown-has-disrupted-sleep-patterns-among-indians-says-survey-by-wakefitco/article31321598.ece

[57] https://journals.plos.org/plosone/article?id=10.1371/journal.pone.0233874

[58] https://www.newindianexpress.com/world/2020/jul/07/suicide-cases-on-the-rise-in-nepal-during-covid-19-lockdown-2166528.html

[59] https://www.hindustantimes.com/cities/suicides-jump-by-11-during-covid-19-lockdown-in-ludhiana/story-A2jcme8heBlIZgDknO9vRN.html

[60] https://www.hindustantimes.com/ranchi/covid-19-over-5-people-died-by-suicide-daily-during-lockdown-in-jharkhand/story-Ox96LbTivjYpeV2Y9dJYK.html

[61] https://theprint.in/india/suicides-see-a-sharp-rise-in-kolkata-amid-lockdown-over-half-are-40-years-or-younger/453853/

के अनुसार आत्महत्या करने वाले लोगों में इस वर्ग के युवाओं की संख्या 66 प्रतिशत थी।[62] उदारतावादी पूँजीवाद पर आधारित लोकतांत्रिक व्यवस्था के सहारे जीवन में कुछ कर गुज़रने की प्रेरणा और आकांक्षा वाले ये युवा पहले ही भयावह भावात्मक संताप झेलते रहे हैं। लॉकडाउन के कारण बंद हुए उद्योगों ने इस तबक़े को बहुत निस्सहाय बना दिया है। भारत में कोविड–19 के कारण आत्महत्या करने वालों में एक बड़ी संख्या छोटे कारोबारियों की रहने का अंदेशा है, जिनके बीच नोटबंदी के बाद से ही आत्महत्याओं की संख्या लगातार बढ़ रही है। भारतीय जाति–व्यवस्था में इनमें से अधिकांश निम्न–वैश्य समुदाय के हैं।[63] ये भारत के बहुसंख्यक समाज के वो तबक़े हैं, जिन्हें उनके श्रम और प्रतिभा के आधार पर अधिकाधिक अवसर उपलब्ध करवाने के दावों के आधार पर उदारतावादी लोकतंत्र और खुले–बाज़ार की मौजूदा इमारत खड़ी हुई थी।

मध्य और उच्च वर्ग में भी तनाव के कारण रोग–प्रतिरोधक क्षमता कम हुई है। ऐसा लग रहा है जैसे हर आदमी थोड़ा–थोड़ा मर रहा है। लोगों के जीवन में से कई वर्ष कम हो गये हैं। कमज़ोर पड़ते शरीर और लॉकडाउन से तनावग्रस्त मस्तिष्क स्वाभाविक तौर पर वायरस के संक्रमण के लिए भी अधिक अनुकूल अवसर मुहैया करवा रहे हैं। स्वास्थ्य सुविधाएँ अस्त–व्यस्त हो गयी हैं, और अधिकांश संसाधन कोविड–19 का 'पीक' आने की कथित तैयारी में झोंके जा रहे हैं। गम्भीर रूप से बीमार लोगों, यहाँ तक कि दुर्घटनाग्रस्त लोगों को भी ठीक से इलाज नहीं मिल पा रहा है। पूरी तरह उपचार नहीं मिलने या गुणवत्तापूर्ण उचित उपचार नहीं मिलने के कारण अकेले भारत में रोज़ हज़ारों लोगों की मौत हो रही है। इनमें अनेक लोगों को उपरोक्त 'लक्षणों' के आधार पर कोविड–19 का मरीज़ घोषित किया जा रहा है।

दूसरी ओर, प्रतिबंधों ने अर्थव्यवस्था को तबाह कर दिया है। इस कारण ग़रीब और मध्य आय वाले देशों में 13 करोड़ अतिरिक्त लोग भूख की चपेट में आ गये हैं। इस साल के अंत तक इनकी संख्या बढ़कर 26 करोड़ हो जाएगी।[64] अकेले भारत में 14 करोड़ लोग बेरोज़गार हो गये हैं।[65] इसका नतीजा क्या होगा, इसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि पिछले साल की एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत में 19.44 करोड़ लोगों को भरपेट भोजन नहीं मिल रहा था तथा कुपोषण के कारण लाखों भारतीय बच्चे डायरिया, निमोनिया और मलेरिया जैसी बीमारियों से हर साल मर रहे थे।[66] सिर्फ़ बच्चे ही नहीं, बल्कि भूखे रहने के कारण बड़ों में भी रोग–प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है। ग़रीबी की मार झेल रहे लाखों वयस्क भारतीयों की मौत वायरस और बैक्टीरिया जनित बीमारियों से हो जाती है। प्रतिबंधों के कारण बढ़ी बेरोज़गारी ने भारत में करोड़ों लोगों को भूखे रहने, और जो पहले से भूखे थे, उन्हें भुखमरी के कगार पर खड़ा कर दिया है। भूखे रहने के कारण प्रतिरोधक क्षमता कम होने से कोविड–19 का संक्रमण होता है और शरीर उस संक्रमण से लड़ नहीं पाता, जिससे उसकी मौत हो जाती है, तो उसे कोविड–19 के मौत के रूप में क्यों गिना जाना चाहिए? जबकि यह स्पष्ट है कि श्रम करके जीने वाले इन लोगों को अगर भोजन मिल रहा होता, तो संक्रमण होने के बावजूद उनकी मौत नहीं होती।

इसके अलावा प्रश्न यह भी है कि चूँकि मौत के मामले में कोविड–19 के साथ अधिकांश सह–रुग्णता को मौत के अंतर्निहित कारण के रूप में नहीं दर्ज करने का निर्देश दिया गया है,[67] तो उन बीमारियों के आँकड़ों का क्या होगा, जिनसे भारत व दुनिया में हर साल लाखों–करोड़ों लोगों की जान जाती है। इनमें

---

[62] https://ncrb.gov.in/hi/भारत–में–दुर्घटना–मृत्यु–और–आत्महत्या–2018.

[63] प्रमोद रंजन (2020), 'भारत में लॉकडाउन और पत्रकारिता', *न्यूज़लॉन्ड्री हिंदी,* 13 जून.

[64] https://www.nytimes.com/2020/04/22/world/africa/coronavirus-hunger-crisis.html

[65] https://www.businesstoday.in/sectors/jobs/india-unemployment-rate-hits-26-amid-lockdown-14-crore-lose-employment-cmie/story/401707.html

[66] https://www.indiafoodbanking.org/hunger

[67] https://timesofindia.indiatimes.com/city/aurangabad/in-comorbidity-cases-covid-19-to-be-listed-as-underlying-cause-of-death/articleshow/76249817.cms

अमेरिका द्वारा पूरी तरह हाथ खींच लिए जाने के बाद अब गेट्स फ़ाउंडेशन डब्ल्यूएचओ का सबसे बड़ा दानदाता है। चूँकि वैश्विक स्वास्थ्य व्यापार को लेकर फ़ाउंडेशन का अपना एजेंडा रहा है तथा वैक्सीन का उत्पादन और बिक्री करने वाली विशाल कम्पनियों में गेट्स फ़ाउंडेशन का भारी निवेश है, इसलिए डब्ल्यूएचओ पर इस फ़ाउंडेशन का प्रभाव अनेक विशेषज्ञों के लिए चिंता का सबब रहा है। दूसरी ओर डब्ल्यूएचओ के मौजूदा प्रमुख डॉ. टेड्रोस की पहचान एक ऐसे कम्युनिस्ट की रही है, जो 'किसी के भी साथ काम कर लेने की प्रतिभा से लैस' होने के साथ-साथ गेट्स फ़ाउंडेशन के अहसानों तले दबे हैं।

से अधिकांश कोविड-19 की तुलना में अधिक पीड़ादायक और जानलेवा है। स्वास्थ्य की बदहाल व्यवस्था, ग़रीबी में बढ़ोतरी आदि के कारण इस बीच इन बीमारियों से मरने वालों की संख्या में बहुत बढ़ोतरी भी हुई होगी। क्या आँकड़ों की इस हेराफेरी से बीमारियों के संबंध में हमारा फ़ोकस और एजेंडा असंतुलित नहीं हो जाएगा ? उन बीमारियों की भयावहता को हम इस लेख में आगे समझने की कोशिश करेंगे।

शव-परीक्षा पर रोक : विज्ञान पर लॉकडाउन

इसी से जुड़ा मामला शव-परीक्षा (पोस्टमार्टम) का भी है, जिसे स्वयं एक राजनीतिक शव-परीक्षा की आवश्यकता है। आईसीएमआर ने अपनी उपरोक्त गाइड-लाइन (भारत में कोविड-19 में मेडिको-लीगल शव परीक्षा के लिए मानक) में कोविड-19 के रूप में चिह्नित किसी भी व्यक्ति की मौत, चाहे उनकी जाँच रिपोर्ट निगेटिव रही हो, प्रतीक्षित हो या रिपोर्ट अस्पष्ट आयी हो; के बाद शव-परीक्षा पर भी यह कहते हुए रोक लगा दी है कि इससे डॉक्टरों, शवगृह के कर्मचारियों आदि को संक्रमण का ख़तरा हो सकता है।[68] भारतीय स्वास्थ्य मंत्रालय ने भी अपने निर्देश में कहा है कि जब तक कोई बहुत विशेष क़ानूनी कारण नहीं हो, कोविड-19 से मृत लोगों के शवों की शव-परीक्षा से बचा जाए।[69] यही कारण है कि भारत के सबसे प्रतिष्ठित अस्पताल व रिसर्च संस्थानों में से एक ऑल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ़ मेडिकल साइंस (एम्स) में भी कोविड-19 के रूप में चिह्नित लोगों की मौत के बाद उनकी शव-परीक्षा नहीं की जा रही है।[70, 71]

भारत के अनेक चिकित्साशास्त्री आईसीएमआर द्वारा लगाई गयी इस रोक को दुर्भाग्यपूर्ण मानते हैं।[72] बंगलूर स्थित ऑक्सफ़र्ड मेडिकल कॉलेज में फ़ॉरेंसिक मेडिसिन के प्रोफ़ेसर दिनेश राव का कहना है कि एचआईवी, टीबी, एच1एन1 जैसे कहीं अधिक घातक वायरसों के मामले में पोस्टमार्टम होते रहे हैं। ऐसे में कोरोना वायरस-2 के मामले में इस पर रोक का कोई तुक नहीं है। पोस्टमार्टम के

---

[68] https://www.ndtv.com/india-news/coronavirus-deaths-no-invasive-method-be-adopted-for-forensic-autopsy-says-icmr-2231906

[69] https://www.mohfw.gov.in/pdf/1584423700568_COVID19GuidelinesonDeadbodymanagement.pdf

[70] https://economictimes.indiatimes.com/industry/healthcare/biotech/healthcare/aiims-waives-autopsy-in-deaths-due-to-covid-19/artic
leshow/75340232.cms?from=mdr

[71] एम्स ने पिछले दिनों चिकित्सा-अनुसंधान के लिए एक पोस्ट-मॉर्टम करने की योजना बनायी थी, लेकिन उसके अभी तक लागू होने की कोई सूचना नहीं है. देखें, :https://economictimes.indiatimes.com/industry/healthcare/biotech/health-care/aiims-to-soon-conduct-1st-autopsy-to-study-virus/articleshow/75855140.cms?from=mdr

[72] https://www.newdelhitimes.com/india-should-start-doing-autopsies-of-patients-dying-of-covid-19/

दौरान चिकित्सकों को संक्रमण से बचाने की तकनीक मामूली और सर्वसुलभ है, जिसका प्रयोग किया जाना चाहिए। उन्होंने मार्च महीने में कोविड-19 मरीज़ों के पोस्टमार्टम की अनुमति के लिए कर्णाटक सरकार को विधिवत् आवेदन भी दिया था, जिसका उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला है।[73] भारत में ही नहीं, दुनिया के प्राय: सभी देशों में कोविड-19 के बहुत कम मामलों में शव-परीक्षा की जा रही है। हालाँकि चीन[74] समेत अमेरिका[75], जर्मनी[76], स्पेन[77], इटली[78], जापान[79], इंग्लैंड[80] आदि कुछ सम्पन्न देशों में शव-परीक्षाएँ हुई हैं, लेकिन उनकी भी संख्या बहुत कम है। जैसा कि हम पहले चर्चा कर चुके हैं, सिर्फ़ कोरोना वायरस-2 के संक्रमण से मृत्यु की सम्भावना नगण्य होती है। सामान्यत: कोविड-19 से मौत तभी होती है, जब मरीज़ किसी अन्य गम्भीर रोग से ग्रस्त हो।[81] ऐसे में, शव-परीक्षा से प्राप्त ऊतकों से पता लगाने में मदद मिल सकती है कि वास्तव में मृत्यु के लिए कौन-सा कारण अधिक ज़िम्मेदार था। यह निर्धारित करने के लिए मृतकों के प्रभावित अंगों में क्या हुआ है, शोधकर्ताओं को बड़ी संख्या में नमूनों की आवश्यकता होती है; जो कि उपलब्ध नहीं हैं। इक्का-दुक्का शव-परीक्षणों से कारणों को ठोस तरीक़ों से बताने वाले तथ्य प्राप्त नहीं हो सकते।[82]

पैथोलॉजी विशेषज्ञों का कहना है कि 'कोविड-19 से हुई मौत के कारणों को समझने के लिए मौत के लिए ज़िम्मेदार ऊतकों की आवश्यकता होती है। क्या यह निमोनिया है? क्या यह रक्त के थक्के हैं? वे गुर्दे की विफलता का विकास क्यों करते हैं? लेकिन हमारे पास इन बातों का कोई सुराग नहीं है।'[83] दरअसल, 'सामान्य दिनों में शव-परीक्षा सिर्फ़ एक मरीज़ के बारे में सवालों का जवाब देती है, लेकिन एक नयी, उभरती हुई बीमारी के दौरान शव-परीक्षा पूरी मानवता के लिए महत्त्वपूर्ण है।'[84] दुनिया के अधिकांश स्वास्थ्य-विज्ञानी इस पर एकमत हैं कि शव-परीक्षा 'उभरते या अज्ञात संक्रामक रोगों के मामले में बहुत महत्त्वपूर्ण होती है'[85] तथा 'कोविड-19 से मृत्यु होने पर भी शरीर में हुए पैथोलॉजिकल परिवर्तनों, रोगाणु की प्रकृति और मृत्यु के कारणों को समझने के लिए शव-परीक्षा की बहुत आवश्यकता है। इसी से बीमारी को अधिक सटीक और वैज्ञानिक तरीक़े से रोकने के लिए सैद्धांतिक आधार उपलब्ध होगा।'[86] कोविड-19 से हुई मौतों के मामले में शव-परीक्षा के प्रति यह उदासीनता देखकर चिकित्सा-विज्ञानी चिंतित हैं। लेकिन भय का ऐसा माहौल बनाया गया है, जिसमें उनकी बात न मीडिया में सुनी जा रही है, न ही नीति-निर्माता उन पर ध्यान दे रहे हैं। चिकित्सा विज्ञानियों का कहना है कि शव-परीक्षा के बिना मृत्यु का सटीक कारण नहीं बताया जा सकता। इसलिए कोविड-19 के मृत्यु के जो आँकड़े इन दिनों जारी हो रहे हैं, वे अतिशयोक्तिपूर्ण हो

---

[73] https://thelogicalindian.com/health/health-experts-devise-method-to-handle-covid-19-dead-bodies-without-fear-21273

[74] https://academic.oup.com/nsr/article/doi/10.1093/nsr/nwaa123/5854209

[75] https://www.mountsinai.org/about/newsroom/2020/mount-sinai-analysis-of-covid19-autopsies-reveals-many-new-details-about-this-disease-pr

[76] https://www.tctmd.com/news/german-covid-19-autopsy-data-show-thromboembolism-heavy-lungs

[77] https://www.web24.news/u/2020/04/fogged-glasses-and-tension-this-was-the-first-autopsies-of-covid-19-in-spain.html

[78] https://www.thelancet.com/journals/laninf/article/PIIS1473-3099(20)30434-5/fulltext

[79] https://wwwnc.cdc.gov/eid/article/26/9/20-1353_article

[80] https://www.rcpath.org/profession/coronavirus-resource-hub/covid-19-post-mortem-portal.html

[81] https://www.worldometers.info/coronavirus/coronavirus-age-sex-demographics/

[82] https://www.nature.com/articles/d41586-020-01355-z

[83] वही.

[84] वही.

[85] https://www.mdpi.com/2077-0383/9/5/1472

[86] https://pubmed.ncbi.nlm.nih.gov/32198985/

भारतीय समाचार-माध्यमों ने इम्पीरियल मॉडल के आधार पर अनुमान लगाया कि भारत में इस बीमारी से लगभग 35 लाख लोग कुछ ही महीने में मारे जाएँगे। इसी के बाद भारत में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 22 मार्च को 14 घंटे के 'जनता कर्फ़्यू' का आह्वान कर अपने इक़बाल का लिटमस टेस्ट किया, और उसकी अप्रत्याशित सफलता के बाद 24 मार्च की रात आठ बजे टीवी पर दिये गये राष्ट्र के नाम एक संदेश में महज़ चार घंटे की छूट देते हुए उसी रात 12 बजे से पूरे देश में वास्तविक 'कर्फ़्यू' जैसे लॉकडाउन का ऐलान कर दिया।

सकते हैं।[87] इटली के नौ चिकित्सा विज्ञानियों ने इस संबंध में गहरी नाराज़गी और क्षोभ प्रकट करते हुए 'जर्नल ऑफ़ क्लिनिकल मेडिसिन' के 'रियल टाइम क्लिनिकल ऐंड एपिडेमियोलॅजिकल इंवेस्टीगेशन ऑन नॉवेल कोरोना वायरस' विषय पर केंद्रित विशेषांक में शोध-पत्र प्रकाशित किया है, जिसमें उन्होंने कोविड-19 की मौतों की शव-परीक्षा नहीं होने को उपचार की खोज के लिए 'एक छूटा हुआ अवसर' और 'विज्ञान पर लॉकडाउन' कहा है।[88] इन शोधकर्ताओं ने बताया है कि 2012 में कोरोना वायरस से ही होने वाले मिडिल ईस्ट रेस्पेरेटरी सिंड्रोम (एमईआरएस) के बारे में शव-परीक्षा से जो जानकारियाँ मिली थीं, उसने पहले से स्वीकृत विचारों को बदल दिया था तथा वायरस के प्रसार के संबंध में अभूतपूर्व चिकित्सकीय अंतर्दृष्टि प्रदान की थी।[89] कोविड-19 के मामले में शव-परीक्षा न होने के कारण अनेक शोध-पत्रों में जो कुछ प्रकाशित हो रहा है, उनमें बहुत सारी सामग्री अनुमान पर आधारित है, जिसके आधार पर लिए जा रहे स्वास्थ्य-विषयक और राजनीतिक फ़ैसले ख़तरनाक हो सकते हैं।

शव-परीक्षा न होने के क्या कारण हैं?

अनेक समाचार माध्यमों में प्रकाशित रपटों के अनुसार शव-परीक्षा करने वाले संस्थानों को व्यक्तिगत सुरक्षा उपकरण (पीपीई) व अन्य सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं, इस कारण शव-परीक्षा करने वाले चिकित्सकों व शव-गृह के कर्मचारियों में संक्रमण फैलने का भय है। साथ ही, बीमारी के कारण फैली अफ़रा-तफ़री और भीड़ के कारण मृतक के परिवार के सदस्यों से शव-परीक्षा के लिए सहमति लेने में दिक़्क़तें आ रही हैं।[90] मसलन, जापान में जून में हुए एक सर्वेक्षण में शव-परीक्षा करने वाली आधी से अधिक संस्थाओं ने स्वीकार किया कि वे कोविड-19 संक्रमण के संदिग्ध शवों को शव-परीक्षा के लिए स्वीकार नहीं कर रही हैं। यह सर्वेक्षण जापानी सोसायटी ऑफ़ लीगल मेडिसिन और

[87] https://www.mdpi.com/2077-0383/9/5/1472
[88] वही.
[89] वही.
[90] https://www.nature.com/articles/d41586-020-01355-z

जापानी सोसायटी फ़ॉरेंसिक पैथोलॉजी ने मिल कर किया था। ये संस्थाएँ इस बात को लेकर चिंतित हैं कि मृत्यु के कारणों में इतना क्षेत्रीय अंतर क्यों दिख रहा है। सर्वेक्षण में शव-परीक्षा करने वाली संस्थाओं ने बताया कि उनके पास पीपीई किटों की कमी है।[91] लेकिन इसकी बड़ी वजह यह है कि एक ओर इस नये रोग के असर को बेहतर तरीक़े से समझने वाली पैथोलॉजी की डब्ल्यूएचओ द्वारा उपेक्षा कर दी गयी है। दूसरी ओर, आनन-फानन में टीके की खोज और उत्पादन पर विभिन्न संस्थाएँ बहुत बल दे रही हैं। सरकारों ने भी स्थानीय स्तर पर टेस्ट तथा बीमारी के सम्भावित उपचार की प्रयोगात्मक विधियों के प्रयोग— विशेष केंद्रों की स्थापना आदि पर बहुत ख़र्च किया है, जबकि शव-परीक्षा को ग़ैर-ज़रूरी और 'टालने योग्य' क़रार दे दिया है।

कोविड-19 से संबंधित छोटे से छोटे पक्ष पर विस्तार से दिशा-निर्देश देने तथा उन्हें पूरा करने के लिए देशों पर नैतिक दबाव बनाने वाला विश्व स्वास्थ्य संगठन भी शव-परीक्षा के संबंध में मौन है। उसने मार्च महीने में जारी 'नॉवेल कोरोना वायरस के लिए एक समन्वित वैश्विक अनुसंधान रोड मैप'[92] और 'कोविड-19 के संदर्भ में शव के सुरक्षित प्रबंधन, संक्रमण की रोकथाम और नियंत्रण के लिए जारी आंतरिक गाइड-लाइन' के अतिरिक्त इस विषय पर कोई बात नहीं की है। इस गाइड-लाइन में डब्ल्यूएचओ ने कहा है कि 'यदि कोविड-19 के संक्रमण की अवधि के दौरान किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है, तो उसके फेफ़ड़ों व अन्य अंगों में जीवित वायरस हो सकता है। शव-परीक्षा के दौरान एरोसोल पैदा करने वाली प्रक्रियाओं (जैसे कि पॉवर सॉ के इस्तेमाल या आँतों की धुलाई) के दौरान चिकित्सकों के श्वसन-तंत्र की सुरक्षा हेतु अतिरिक्त उपाय किये जाने चाहिए। इसके अतिरिक्त गाइड-लाइन में ब्रिटेन के रॉयल कॉलेज ऑफ़ पैथोलॅजिस्ट और अमेरिका के सेंटर फ़ॉर डिज़ीज़ कंट्रोल ऐंड प्रिवेंशन (सीडीसी) को उद्धृत करते हुए बताया गया है कि कोविड-19 के मामले में शव-परीक्षा के समय 'सुरक्षा' के अलावा पीपीई के प्रयोग तथा कमरे में हवा के प्राकृतिक संचार का ख़याल रखना चाहिए।[93] डब्ल्यूएचओ की उपरोक्त गाइड-लाइन से भी साफ़ है कि कोविड-19 से मृत व्यक्तियों की शव-परीक्षा उतनी ख़तरनाक नहीं है। लेकिन, भारत समेत विभिन्न देशों में इसका हौवा खड़ा कर दिया गया है।[94] यह एक ऐसी चीज़ है जिसे संक्रामक रोगों से सुरक्षा के लिए अपनाए जाने वाले सामान्य उपाय अपनाकर भी अंजाम दिया जा सकता है।

शवों के अंतिम संस्कार के संदर्भ में डब्ल्यूएचओ ने कहा है कि 'कोविड-19 से मारे गये लोगों के शवों के सम्पर्क में आने पर संक्रमित होने का कोई सबूत अभी तक नहीं मिला है। इसलिए उनकी सांस्कृतिक और धार्मिक परम्पराओं के अनुसार उन्हें जलाया या दफ़नाया जा सकता है।'[95] (स्वाभाविक तौर पर ध्यान इस ओर भी जाता है कि उपरोक्त तथ्य के बावजूद आख़िर शवों की अंतिम क्रिया को लेकर इतनी अराजकता क्यों है? क्यों लोग अपने-अपने इलाक़े में शवों के दफ़नाने-जलाने का विरोध कर रहे हैं? क्यों इस तथ्य का प्रचार नहीं किया जा रहा कि शव से कोविड-19 का संक्रमण नहीं फैलता, क्योंकि शव न तो खाँस सकता है, न थूक सकता है, न बोल सकता है, न अपना कफ़न हटा सकता है! विषाणु मृतक के शरीर के अंदर होते हैं, जो अपने आप बाहर नहीं आ सकते। एक शव उतना ही घातक है, जितना कि कपड़े से ढकी कोई लोहे की रॉड, जिस पर संयोगवश कोई ड्रॉपलेट

---

[91] https://the-japan-news.com/news/article/0006618961
[92] https://www.who.int/blueprint/priority-diseases/key-action/Coronavirus_Roadmap_V9.pdf
[93] https://apps.who.int/iris/bitstream/handle/10665/331538/WHO-COVID-19-lPC_DBMgmt-2020.1-eng.pdf
[94] https://economictimes.indiatimes.com/industry/healthcare/biotech/healthcare/aiims-waives-autopsy-in-deaths-due-to-covid-19/articleshow/75340232.cms?from=mdr
[95] वही.

महामारी विशेषज्ञों जोहान गिसेके और एंडर्स टेगननेल के लोकतांत्रिक व मानवीय सुझावों पर अमल करने वाले स्वीडन ने कोई भी दमनकारी प्रतिबंध नहीं लगाया। लोगों को सुरक्षित दूरी का पालन करने व भीड़-भाड़ वाली जगहों से बचने की सलाहों व न्यूनतम प्रतिबंधों के साथ वहाँ स्कूल, कॉलेज, पब-बार, रेस्त्राँ सब खुले रहे। नील फ़र्ग्युसन के मॉडल के आधार पर किया गया पूर्वानुमान था कि अगर स्वीडन में लॉकडाउन नहीं किया गया तो तीन महीने में 90 हज़ार लोगों की मौत होगी और अगर लॉकडाउन किया गया, तो मौतों की संख्या 40 हज़ार पर सिमट जाएगी। लेकिन वहाँ वास्तव में मई के अंत तक यानी तीन महीने में बिना लॉकडाउन के केवल 4,350 मौतों की ख़बर आयी।

पड़ा हो। हाँ, वह एक संक्रमित व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में अवश्य फैल सकता है। तथ्यों के चुनिंदा प्रचार की यह नीति किसके हित में है?)

बहरहाल, डब्ल्यूएचओ ने उपरोक्त गाइड-लाइन में शव-परीक्षा के महत्त्व— रोग की बेहतर पहचान और उपचार के तरीक़ों की खोज— के लिए उसकी महत्ता पर कोई बल नहीं दिया है। आश्चर्यजनक है कि डब्ल्यूएचओ कोविड-19 के मरीज़ों से संबंधित आँकड़ों को मौजूदा समय में जमा करने और उसे वैश्विक स्तर पर प्रसारित करने के लिए कई ऐसे क़दम उठाए हैं, जिनमें उतावलापन और अतिरेक की झलक दिखती है, जबकि शव-परीक्षा जैसी आवश्यक प्रक्रिया पर उसने चुप्पी ओढ़ रखी है। इन पहलुओं पर हम लेख के अगले हिस्से में विचार करेंगे। अभी हम उन बीमारियों की कोविड-19 से तुलना करेंगे, जिनमें से कुछ का मैंने लेख के पहले हिस्से में उल्लेख किया है।

बीमारियों के महासागर में कोविड-19 की जगह

पिछले छह महीने से कोविड-19 के ख़तरे को बिना किसी तुलनात्मक संदर्भ के प्रस्तुत किया जा रहा है। भारत समेत दुनिया के अधिकांश देशों में सरकारों ने मीडिया को कोविड-19 के बारे में सिर्फ़ उनके द्वारा प्रस्तुत 'आधिकारिक तथ्य' प्रसारित करने लिए बाध्य किया है, जिनका उल्लंघन करने पर कड़ी सज़ा के प्रावधान किये गये हैं। इन कारणों से समाचार-माध्यमों में अधिकांश वही आँकड़े और व्याख्याएँ प्रसारित हो रही हैं, जो या तो संबंधित देशों की सरकारें पेश कर रही हैं, यह फिर जिन्हें डब्ल्यूएचओ जारी कर रहा है।[96] संचार-माध्यमों द्वारा रोज़ बताया जाता है कि आज कोविड-19 के संक्रमण के इतने मामले सामने आये या उनकी कुल संख्या अब बढ़ कर इतनी हो गयी है; आज कोविड-19 से इतने मरे, यह कल की तुलना में कितना ज़्यादा या कम है आदि। ग़ौर करें कि इन सूचनाओं में कोविड-19 की तुलना का संदर्भ बिंदु सिर्फ़ कोविड-19 ही है। अन्य बीमारियाँ, यहाँ तक कि मौजूदा समय में जारी अन्य महामारियाँ भी इन सूचनाओं के दायरे से बाहर हो गयी हैं। हो यह रहा है कि तुलनात्मक संदर्भ के अभाव में ये आँकड़े एक तरह से अनुपातहीन भय का निर्माण कर रहे हैं। लेख के इस खण्ड में हम इस पहलू को भी समझने की कोशिश करेंगे।

---

[96] प्रमोद रंजन (2020), 'कोविड-19 : पत्रकारिता से क्यों ग़ायब हैं सवाल', *नया पथ*, वर्ष 34, अंक 14 (अप्रैल-जून) : 96.

दुनिया भर में एक साल में लगभग 5.6 करोड़ लोगों की मौत होती है (2017 के उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार)। यानी, हर रोज़ लगभग 1.5 लाख लोग मरते हैं। इनमें से आधे से अधिक (51 प्रतिशत) लोगों की उम्र 70 वर्ष से कम होती है।[97] आज ग्लोबल जीवन-प्रत्याशा 76 वर्ष है। भारत में यह 69, अमेरिका में 78.5 तथा युरोप में 81 वर्ष है। यानी, हर साल कुल मरने वालों में आधे से अधिक की मृत्यु को असमय कहा जा सकता है। 2017 के दौरान मृतकों की कुल संख्या—5.6 करोड़ में 49 प्रतिशत लोग 70 से अधिक उम्र के थे। इनमें 27 प्रतिशत की उम्र 50 से 69 वर्ष; 14 प्रतिशत की 15 से 49 वर्ष के बीच के थी, और 10 प्रतिशत 5 वर्ष से कम उम्र के बच्चे थे।[98] असमय मरने वाले इन लोगों में से अधिकांश उन बीमारियों से ग्रस्त थे जिनका उपचार उपलब्ध है तथा अच्छी स्वास्थ्य-व्यवस्था होने पर उन्हें बचाया जा सकता था। जिन बीमारियों से लोग सबसे अधिक मरते हैं, उनका औसत (तालिका-1) इस प्रकार है—

इसी प्रकार कुछ प्रमुख संक्रामक बीमारियों के लिए तालिका-2 में संबंधित आँकड़े देखें।[99] इन संक्रामक बीमारियों को अलग से देखना इसलिए आवश्यक है ताकि हम विभिन्न पैमानों पर इनकी संक्रामक' और 'जानलेवा' कोविड-19 से तुलना कर सकें। इन बीमारियों को अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है तथा इनका समेकित आँकड़ा विभिन्न अध्ययनों के अनुसार अलग-अलग ठहरता है।

तालिका-1

बीमारियों का वैश्विक आँकड़ा (विभिन्न स्रोतों से संकलित)

प्रमुख बीमारियाँ	प्रति दिन औसतन मौतें	प्रति वर्ष औसतन मौतें
रक्तचाप समेत दिल के रोग	50 हज़ार	1.825 करोड़
कैंसर	27 हज़ार	98.5 लाख
साँस की बीमारियाँ	11 हज़ार	40.1 लाख
टीबी व श्वसन तंत्र के अन्य के संक्रमण	7 हज़ार	25 .5 लाख
डिमेंशिया (मस्तिष्क-हानि, भूलने की बीमारी)	7 हज़ार	25.5 लाख
पाचनतंत्र से संबंधित रोग	6.5 हज़ार	23 .72 लाख
नवजात बच्चों को होने वाली समस्याएँ	5 हज़ार	18.25 लाख
मधुमेह	3 हज़ार	10.95 लाख
गुर्दे की बीमारियाँ	3 हज़ार	10.95 लाख

यहाँ हमने इन्हें अद्यतन स्रोतों से लिया है तथा मसले को आसान बनाने के लिए आँकड़ों को मोटे तौर पर पेश किया है। (तालिका में दर्शाई गयी 'मृत्यु-दर' का अर्थ है कुल संक्रमित रोगियों में से मरने

[97] https://ourworldindata.org/causes-of-death#breakdown-of-deaths-by-age
[98] वही.
[99] http://sites.uci.edu/bio932014/files/2014/11/Ebola-Class-Notes.pdf

का वालों का प्रतिशत। 'संक्रमण फैलने की दर' का अर्थ है कि किसी बीमारी से संक्रमित एक व्यक्ति कितने अन्य व्यक्तियों को संक्रमित करता है। आरम्भिक शोधों में पाया गया था कि कोरोना वायरस से संक्रमित एक व्यक्ति औसतन 1.7 से लेकर 2.4 व्यक्तियों तक को संक्रमित कर देता है, लेकिन बाद में चिकित्सा-विज्ञानियों से पाया कि यह दर 6.6 तक हो सकती है।[100] दूसरी ओर, टीबी का एक मरीज़ 10 अन्य व्यक्तियों को संक्रमित करता है। तालिका में इन रोगों से हर साल मरने वालों की औसत संख्या भी दी गयी है। विश्व में हर साल लगभग एक करोड़ लोगों में टीबी के लक्षण उभरते हैं। इनमें से 15 लाख लोग हर साल मर जाते हैं।[101]

इसके अतिरिक्त, दुनिया में एकमात्र महामारी कोविड-19 ही नहीं है, सच यह है कि इसके साथ-साथ अनेक महामारियाँ चल रही हैं। इनमें से कुछ बीमारियों का प्रसार एक ख़ास क्षेत्र तक सीमित है, जबकि कुछ का प्रसार वैश्विक है। दुनिया के आपस में जुड़ जाने के कारण संक्रामक बीमारियाँ देश-देशांतर का सफ़र आसानी से कर रही हैं। पिछले कई वर्षों से जारी महामारियों[102] में प्रमुख हैं : एचआईवी-एड्स, मिडिल ईस्ट रेस्पेरेटरी सिंड्रोम (मेर्स), सीवियर एक्यूट रेस्पेरेटरी सिंड्रोम (सार्स), इबोला, येलो फ़ीवर,

तालिका-2

संक्रामक बीमारियों का वैश्विक आँकड़ा (विभिन्न स्रोतों से संकलित)

बीमारी	मृत्यु-दर (प्रतिशत)	संक्रमण की दर	प्रति दिन औसतन मौतें	प्रति वर्ष औसतन मौतें	संक्रमण-वाहक	रोग-जनक
कोविड	.1-7	1.7-6.6	2860 (आँकड़ों के संकलन में अतिरेक के बावजूद	—	थूक की बूँदों के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्पर्क में आने से; संक्रमण के तरीक़ों की अभी तक पूरी जानकारी नहीं।	वायरस
टीबी	7-43	10	4109	15 लाख	हवा में उड़ने वाले सूक्ष्म बूँदों से, जो बहुत समय तक वातावरण में मौजूद रहती हैं	बैक्टीरिया
न्यूमोनिया	5-30	—	2191	8 लाख	न्यूमोनिया के वायरस और बैक्टीरिया बच्चों की नाक या गले में पाए जाते हैं; संक्रमण के तरीक़ों की अभी तक पूरी जानकारी नहीं।	बैक्टीरिया और वायरस
एचआईवी	80-90	2-5	2600	9.49 लाख	शरीर-द्रव से	वायरस
मलेरिया	.50-10	80	1095	4 लाख	मच्छर काटने से	परजीवी
हेपेटाइटिस-सी	3-7	—	1093	3.99 लाख	रक्त के सम्पर्क में आने से	वायरस
मौसमी जुक़ाम	.10-.45	2.5	794-1784	2.90 लाख से 6.5 लाख	हवा में उड़ने वाले सूक्ष्म बूँदों से, जो बहुत समय तक वातावरण में मौजूद रहती हैं	वायरस
टायफ़ायड	1-30	2.8	441	1.61 लाख	मल-कण से	बैक्टीरिया
डायरिया	5-10	2.13	1438	5.25 लाख	मल-कण से	बैक्टीरिया
रैबीज़	100	1.6	150	55 हज़ार	कुत्ते के काटने से	वायरस

[100] https://www.medrxiv.org/content/10.1101/2020.02.07.20021154v1.
[101] https://www.who.int/news-room/fact-sheets/detail/tuberculosis.
[102] https://www.who.int/emergencies/diseases/en/.

क्रीमियन–कांगो रक्तस्रावी बुख़ार, चिकनगुनिया, मारबर्ग वायरस, रिफ़्ट वैली फ़ीवर, निप्पा वायरस और डेंगू तथा लासा बुख़ार आदि। ये सभी ला–इलाज हैं तथा इनमें से अधिकांश की वैक्सीन तैयार नहीं हो सकी है। इनमें से अधिकांश की मृत्यु दर कोविड–19 से कई गुणा ज़्यादा है। कुछ की मृत्यु दर तो 80 से 100 प्रतिशत तक है। एड्स–महामारी से दुनिया में 3.4 करोड़ लोग पीड़ित हैं, जिनमें से रोज़ 26 सौ से अधिक लोगों की मौत हो जाती है। 1981 से जारी इस महामारी से आज भी लगभग आठ लाख लोग हर साल मरते हैं।[103] कोविड–19 के नाम पर लगे प्रतिबंधों से एड्स के रोगियों का इलाज बाधित हो गया है, इस कारण अकेले अफ़्रीका में इस साल 5.5 लाख अतिरिक्त लोगों के एड्स से मारे जाने की आशंका है।[104] इनमें से अधिकांश बीमारियाँ वायरस से ही फैलती हैं और दुनिया में हर साल करोड़ों लोग इनकी चपेट में आते हैं। अधिकांश बीमारियों द्वारा दबोचे जाने का तरीक़ा वही होता है, जो कोविड–19 का है। जिनकी रोग–प्रतिरोधक क्षमता अच्छी होती है, वे उनसे लड़ लेते हैं, जिनकी कमज़ोर होती है, वे मारे जाते हैं। कुछ अपवादों को छोड़ कर अधिकांश बीमारियों के शिकार कम रोग प्रतिरोधक क्षमता व सह–रुग्णता वाले उम्रदराज़ लोग होते हैं। कुछ बीमारियों के मुख्य शिकार बच्चे होते हैं।

इन आँकड़ों को इस नज़रिये से भी देखें कि दुनिया में हर दिन 4100 से अधिक लोग टीबी से तड़प कर मर जाते हैं। लेकिन यह ख़बर हम तक नहीं पहुँचती। दुनिया में 180 करोड़ लोग, यानी दुनिया की एक चौथाई आबादी, टी.बी. के बैक्टीरिया 'माइक्रोबैक्टिरियम ट्यूबरक्लोसिस' की साइलेंट कैरियर है।[105] विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट बताती है दुनिया में हर सेकेंड एक नये व्यक्ति को टी.बी. का संक्रमण हो रहा है।[106] माइक्रोबैक्टिरियम ट्यूबरक्लोसिस भी कोरोना की ही तरह, संक्रमित व्यक्ति की खाँसी, छींक, यहाँ तक कि हवा में उड़ती थूक की बूँदों से भी फैलता है। इसी तरह दुनिया में डायरिया से हर रोज़ 1438, न्यूमोनिया से 2191, मलेरिया से 1095 और हेपेटाइटिस–सी से 1093 और हैजे से लगभग 450 लोग मर जाते हैं। और, जिसे हम सामान्य फ़्लू मान कर अक्सर फूँक में उड़ा देने वाला समझते हैं, उस मौसमी इंफ़्लूएंजा (फ़्लू) से दुनिया में हर रोज़ 794 से 1784 लोग काल–कवलित हो जाते हैं। मौसमी फ़्लू दुनिया में कहीं न कहीं हमेशा बना रहता है, जिस साल यह ज़ोरों पर होता है, उस साल इससे मरने वालों की संख्या बढ़ जाती है। अन्य वायरस जनित बीमारियों की ही तरह आज तक फ़्लू की भी प्रामाणिक दवा नहीं बन सकी है। इसके लिए जो वैक्सीन बनी है, वह भी सिर्फ़ एक मौसम में काम करती है, क्योंकि अगले मौसम में यह वायरस रूप बदल कर आता है, और उस वैक्सीन का प्रभाव ख़त्म हो जाता है।

दुनिया में हर साल 1.825 करोड़ लोग हृदय संबंधी बीमारियों से, 98.5 लाख फेफ़ड़ों के कैंसर से और 10.95 लाख लोग मधुमेह से मारे जाते हैं। मनोरोगियों की संख्या सबसे तेज़ी से बढ़ रही है। हर साल 25.5 लाख लोग मनोभ्रंश से मर जाते हैं। दूसरी ओर, कोरोना वायरस–2 से संक्रमित लोगों में 80 प्रतिशत ऐसे हैं, जो 'एसिम्पटोमैटिक' है। 'एसिम्पटोमैटिक' होने का अर्थ है कि ऐसे लोगों को कोई 'बीमारी' नहीं है। वे 'कोविड–19 के मरीज़' नहीं है। हालाँकि समाचार माध्यमों द्वारा निरंतर ऐसे लोगों को 'कोविड–19 के मरीज़' के रूप में प्रचारित किया जा रहा है। जैसा कि हमने ऊपर बताया, दुनिया में 180 करोड़ लोग, यानी दुनिया की एक चौथाई आबादी टीबी के माइक्रोबैक्टिरियम ट्यूबरक्लोसिस को चुपचाप लिए घूमती है। लेकिन, ऐसे लोगों को एसिम्पटोमैटिक कहा जाता है।

---

[103] https://www.onhealth.com/content/1/hiv_aids_history.

[104] https://www.aidsmap.com/news/may-2020/disruption-hiv-treatment-africa-during-covid-19-pandemic-could-double-hiv-deaths.

[105] https://www.tballiance.org/why-new-tb-drugs/global-pandemic

[106] https://www.who.int/3by5/TBfactsheet.pdf

इसका अर्थ यह नहीं है कि दुनिया के 25 प्रतिशत लोगों को टी.बी. है।[107] टीबी के एसिम्पटोमैटिक लोगों से बीमारी नहीं फैलती, लेकिन हैजा, टायफ़ायड, मलेरिया, पोलियो और इंफ़्लुएंजा आदि दर्जनों ऐसी बीमारियाँ हैं जो एसिम्पटोमैटिक लोगों के सम्पर्क में आने से फैलती है।[108] एचआईवी-एड्स, डेंगू, जैसी अनेक लाइलाज बीमारियाँ हैं, जिनका संक्रमण एसिम्पटोमैटिक लोगों से शुरू होता है। लेकिन चिकित्सा शास्त्र भी इन्हें संबंधित बीमारी का मरीज़ नहीं कहता, समाजशास्त्र में तो हम यह क़तई नहीं कहेंगे। दुनिया में करोड़ों एसिम्पटोमैटिक लोग वर्षों से हमारे साथ रह रहे हैं। हम स्वयं भी किसी भयावह बीमारी के वाहक हो सकते हैं और दुनिया हमारे साथ ख़ुशी-ख़ुशी रह रही है! समाज के बनने और होने की यह आरम्भिक शर्त ही है कि वह अपने सदस्यों को उनकी किंचित कमियों, बदमाशियों और कई तरह के ऊबड़खाबड़पन को स्वीकार करता है।

इसी प्रकार, कोरोना की ऐसी छवि बनाई गयी है जैसे कोविड-19 बुज़ुर्गों के लिए पूरी तरह प्राणघातक हो। लेकिन यह बात न मृत्यु दर के आँकड़ों से प्रमाणित होती है, न ही कोई अन्य शोध इसकी पुष्टि करता है। वास्तव में युवाओं और अधेड़ों की तरह अधिकांश बुज़ुर्गों में भी संक्रमण के बावजूद कोविड-19 के कोई लक्षण नहीं उभरते। इटली में एक बहुत बड़े सैंपल साइज़ पर किये गये अध्ययन के अनुसार 60 वर्ष से कम आयु के संक्रमित व्यक्तियों में से 73.9 प्रतिशत एसिम्पटोमैटिक थे। 60 वर्ष से अधिक उम्र वालों में भी महज़ 6.6 प्रतिशत में लोगों में ही बीमारी ने गम्भीर रूप धारण किया था। अन्य लोगों में इसके लक्षण बहुत हल्के थे।[109] ज़ाहिर है, मृत्यु दर तो बहुत कम थी ही।

भारत में बीमारियाँ

भारत में हर रोज़ लगभग 26 हज़ार लोगों की मौत होती है, जिनमें से जीवन-प्रत्याशा के हिसाब से आधे से अधिक को असमय मृत्यु कहा जा सकता है। इनमें से 1600 बच्चों की उम्र पाँच साल से कम होती हैं।[110] भारत में हर साल लगभग आठ लाख लोग कैंसर से मरते हैं।[111] भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, इंडोनेशिया और नाइज़ीरिया जैसे कुछ अन्य देशों में ग़रीबों के लिए टी.बी. का संक्रमण सबसे घातक है। टी.बी. से मौतों के मामले में भारत विश्व में पहले स्थान पर है। अकेले भारत में हर साल 25 लाख से अधिक लोगों को टी.बी. होती है, जिनमें से हर साल 4.5 लाख लोगों की मौत हो जाती है। भारत में न्यूमोनिया से हर साल 1.27 लाख लोग मरते हैं, जिनमें बच्चों की संख्या सबसे अधिक होती है। न्यूमोनिया से मरने वालों में विश्व में भारत का नम्बर दूसरा है। पहले नम्बर पर नाइज़ीरिया है। भारत में मलेरिया से हर साल लगभग 2 लाख लोगों की मौत होती है, जिनमें से ज़्यादातर आदिवासी होते हैं। भारत में हर साल एक लाख से अधिक बच्चे डायरिया से मर जाते हैं। इसी तरह, यहाँ हर साल हैजे से भी हज़ारों लोगों की मौत होती है।

इन बीमारियों की रिपोर्टिंग करने के मामले में अनेक ग़रीब और विकासशील देशों की तरह भारत सरकार का रिकॉर्ड भी बहुत ख़राब रहा है। ऐसे अनेक मामले सामने आये हैं, जिनमें भारत द्वारा विश्व स्वास्थ्य संगठन को भेजे गये बीमारियों के आँकड़े वास्तविक संख्या से कई सौ गुणा कम थे।

---

[107] प्रमोद रंजन (2020), 'आँकड़ों की राजनीति और लॉकडाउन से होने वाली मौतें', *जनचौक* (वेब-पोर्टल), 10 जून.

[108] https://en.wikipedia.org/wiki/Asymptomatic

[109] https://arxiv.org/abs/2006.08471?utm_medium=email&utm_source=CampaignMonitor_Editorial&utm_campaign=LNCH%20%2020200810%20%20House%20Ads%20%20SM+CID_090a209b59b7a892301959cafe3c50e8

[110] https://www.thehindubusinessline.com/opinion/covid-19-numbers-should-be-seen-with-context/article31786497.ece

[111] http://cancerindia.org.in/cancer-statistics/

एक दार्शनिक आवाज़ // 1

इतालवी दार्शनिक जॉर्जो आगाम्बेन ने कोरोना से संबंधित तीन टिप्पणियाँ अपने इतालियन ब्लॉग *क्वोड्लिबेट* और एक इतालवी वेब साइट पर क्रमशः 26.फरवरी, 17 मार्च और 23 मई, 2020 को लिखी थीं। इनका अंग्रेज़ी अनुवाद *युरोपीय जर्नल ऑफ़ साइकोएनालिसिस* ने प्रकाशित किया। आगाम्बेन की पहली टिप्पणी एक साधारण किस्म की संक्रामक बीमारी को भयंकर और सांघातिक महामारी क़रार देने और उसके प्रति राज्य द्वारा की गयी अनुपातहीन प्रतिक्रिया की आलोचना करती है। इस पर कई प्रकार की नकारात्मक प्रतिक्रियाएँ भी आयीं, जिसके उत्तर में उन्होंने अपने ब्लॉग पर एक प्रखर 'स्पष्टीकरण' दिया, जो यहाँ उनकी दूसरी टिप्पणी के रूप में संकलित है। तीसरी टिप्पणी शिक्षा, विद्यार्थी और विश्वविद्यालयों के भविष्य के बारे में है। इतालवी संदर्भ में होने के बावजूद आगाम्बेन के ये विचार भारत समेत दुनिया के अन्य देशों की परिस्थितियों के लिए भी उतने ही प्रासंगिक हैं। पहली दो टिप्पणियों का अंग्रेज़ी अनुवाद एलन कोट्सको और तीसरी का डी. एलन डीन ने किया। यहाँ प्रोफ़ेसर आगाम्बेन की अनुमति से इन टिप्पणियों का हिंदी अनुवाद छापा जा रहा है।

— प्रमोद रंजन

एक महामारी का आविष्कार

जॉर्जो आगाम्बेन

हम आज तथाकथित कोरोना महामारी से निपटने के लिए जल्दबाज़ी में उठाए गये निहायत अतार्किक और अकारण आपातकालीन क़दमों से जूझ रहे हैं। इस मसले की पड़ताल की शुरुआत हमें नैशनल रिसर्च कौंसिल (सीएनआर) द्वारा की गयी इस घोषणा से करनी चाहिए कि 'इटली में सार्स कोविड-2 महामारी नहीं है'। कौंसिल ने यह भी कहा कि 'इस महामारी से संबंधित दसियों हज़ार मामलों पर आधारित जो आँकड़े उपलब्ध हैं, उनके अनुसार 80-90 प्रतिशत मामलों में यह संक्रमण केवल मामूली लक्षणों (इन्फ़्लुएंजा की तरह) को जन्म देता है। लगभग 10-15 प्रतिशत मामलों में मरीज़ों को न्यूमोनिया हो सकता है, परंतु इनमें से अधिकांश मरीजों के लिए यह जानलेवा नहीं होगा। केवल चार प्रतिशत मरीज़ों को इंटेंसिव थेरेपी की ज़रूरत पड़ेगी।'

अगर यह सही है तो भला क्या कारण है कि मीडिया और सरकार देश में डर और घबराहट का माहौल बनाने की हरचंद कोशिश कर रहे हैं? इसका नतीजा यह हुआ है कि लोगों के आने-जाने और यात्रा करने के अधिकार पर रोक लग गयी है और रोज़ाना की ज़िंदगी ठहर सी गयी है।

इस ग़ैर-आनुपातिक प्रतिक्रिया के पीछे दो कारक हो सकते हैं। पहला और सबसे महत्त्वपूर्ण है— अपवादात्मक स्थितियों का सामान्यीकरण करने की सरकार की प्रवृत्ति। सरकार ने 'साफ़-सफ़ाई और जनता की सुरक्षा' की ख़ातिर जिस विधायी आदेश को तुरत-फुरत लागू करने की मंज़ूरी दी उससे एक

वर्ष 2015 में भारत ने विश्व बैंक को बताया कि उस साल यहाँ सिर्फ़ 561 लोग मलेरिया से मारे गये, जबकि वास्तविकता थी कि यहाँ हर साल लगभग 2 लाख युवा व अधेड़ आदिवासी मलेरिया से मर रहे थे। भारत में मलेरिया से मरने वालों में ज़्यादातर आदिवासी ही होते हैं। भारत सरकार के इस ग़ैर-ज़िम्मेदाराना व्यवहार को अल-ज़ज़ीरा ने अपनी एक रिपोर्ट[112] में उजागर किया था। इसी प्रकार, विश्व स्वास्थ्य संगठन के बुलेटिन में हैजे के मामलों पर एक शोध-पत्र[113] प्रकाशित हुआ था जिसमें शोधकर्ताओं ने साफ़ बताया था कि उक्त मामले में न केवल भारत द्वारा की गयी रिपोर्टिंग अधूरी है, बल्कि उसने घटनाओं का आँकड़ा रखने के लिए भी ग़लत तरीक़े इस्तेमाल किये हैं।

---

[112] http://america.aljazeera.com/articles/2016/1/11/malaria-crisis-india-doesnt-want-to-acknowledge.html

[113] https://www.who.int/bulletin/volumes/88/3/09-073460.pdf?ua=1

तरह से 'ऐसे म्युनिसिपल और अन्य क्षेत्रों का फ़ौजीकरण कर दिया गया जहाँ एक भी ऐसा व्यक्ति है जो कोविड पॉज़िटिव है और जिसके संक्रमण का स्रोत अज्ञात है या जहाँ संक्रमण का एक भी ऐसा मामला है जिसे किसी ऐसे व्यक्ति से नहीं जोड़ा जा सकता जो हाल में किसी संक्रमित इलाक़े से लौटा हो। ज़ाहिर है कि इस तरह की स्थिति कई क्षेत्रों में बनेगी और नतीजे में इन अपवादात्मक आदेशों को एक बड़े क्षेत्र में लागू किया जा सकेगा। इस आदेश में लोगों की स्वतंत्रता पर जो गम्भीर रोकें लगाई गयी हैं, वे इस प्रकार हैं—

1. कोई भी व्यक्ति प्रभावित म्युनिसिपेलिटी या क्षेत्र से बाहर नहीं जा सकेगा।
2. कोई बाहरी व्यक्ति इस म्युनिसिपेलिटी या क्षेत्र के अंदर नहीं आ सकेगा।
3. निजी या सार्वजनिक स्थानों पर सभी प्रकार के जमावड़ों, जिनमें सांस्कृतिक, धार्मिक और खेल संबंधी जमावड़े शामिल हैं, पर रोक रहेगी— ऐसे स्थानों पर भी जो किसी भवन के अंदर हैं परंतु उनमें आम लोगों को प्रवेश की अनुमति है।
4. सभी किंडरगार्टन, स्कूल और बच्चों के देखभाल की सेवाएँ बंद रहेंगी। उच्च और व्यावसायिक शिक्षण संस्थाओं में 'डिस्टेंस लर्निंग' के अलावा सभी शैक्षणिक गतिविधियाँ प्रतिबंधित रहेंगी।
5. संग्रहालय और अन्य सांस्कृतिक संस्थाएँ और स्थल जनता के लिए बंद रहेंगे। इनमें वे सभी स्थल शामिल हैं जो 22 जनवरी, 2004 के विधायी आदेश क्रमांक-42 के अंतर्गत कोड ऑफ़ कल्चरल ऐंड लैंडस्केप हेरिटेज के अनुच्छेद-101 में शामिल हैं। इन संस्थाओं और स्थलों पर सार्वजनिक प्रवेश के अधिकार से संबंधित नियम निलम्बित रहेंगे।
6. इटली के अंदर या विदेशों की शैक्षणिक यात्राएँ निलम्बित रहेंगी।
7. सभी परीक्षाएँ स्थगित रहेंगी और सार्वजनिक कार्यालयों में कोई काम नहीं होगा, सिवाय आवश्यक और सार्वजनिक उपयोगिता सेवाओं के संचालन के।
8. क्वारंटाइन संबंधी नियम प्रभावशील होंगे और उन लोगों पर कड़ाई से नज़र रखी जाएगी जो संक्रमित व्यक्तियों के सम्पर्क में आये हैं।

सीएनआर का कहना है कि यह संक्रमण साधारण फ़्लू से अलग नहीं है, जिसका सामना हम हर साल करते हैं। फिर यह अनुपातहीन प्रतिक्रिया क्या अजीब नहीं है? ऐसा लगता है कि चूँकि अब आतंकवाद के नाम पर असाधारण और अपवादात्मक क़दम नहीं उठाये जा सकते, इसलिए एक महामारी का आविष्कार कर लिया गया है जिसके बहाने इन क़दमों को कितना भी कड़ा किया सकता है।

इससे भी अधिक विचलित करने वाली बात यह है कि पिछले कुछ सालों में भय का जो वातावरण व्याप्त हो गया है उसे ऐसी परिस्थितियाँ भाती हैं जिनमें सामूहिक घबराहट और अफ़रातफ़री फैले। इसके लिए यह महामारी एक आदर्श बहाना है। इस तरह एक दुष्चक्र बन गया है। सरकार द्वारा स्वतंत्रता पर लगाई गयी रोकों को इसलिए स्वीकार कर लिया जाता है क्योंकि लोगों में सुरक्षित रहने की इच्छा है। और यह इच्छा उन्हीं सरकारों ने पैदा की है जो अब उसे पूरा करने के लिए तरह-तरह के प्रपंच रच रही हैं।

सामान्यत: यह समझा जाता है कि कोविड-19 की भयावहता इसलिए अधिक है, क्योंकि इसकी न कोई अंग्रेज़ी दवा है, न ही वैक्सीन। यानी जब तक इसकी वैक्सीन तैयार नहीं हो जाती, तब तक दुनिया ख़तरे में है। बिट्रेन की नैशनल हेल्थ सर्विस (एनयेचएस) के सलाहकार और प्रोफ़ेसर जॉन ली इस संबंध में जागरूकता फैलाने के लिए निरंतर लिख रहे हैं। उनके अनुसार, अब हमारे पास ऐसे उपकरण हैं जो हमें नये वायरसों का पता लगाने (और उन्हें नये नाम देने) की सुविधा देते हैं। इन उपकरणों के माध्यम से हम उनकी प्रगति वास्तविक समय में देखते हैं और इसके वैश्विक प्रसार से संबंधित डरावनी कहानियाँ सोशल मीडिया पर शेयर करते हैं। ऐसे में, एक वायरस के प्रसार की सामान्य प्रगति, एक रहस्य-रोमांच से भरपूर और बेहद डरावनी भुतहा फ़िल्म में तब्दील हो जाती है।[114] ली लिखते है कोविड के संबंध में जारी यह पूरा ड्रामा इस कारण पैदा नहीं हुआ कि इसका वायरस असामान्य रूप से घातक है। बल्कि

[114] वही.

इस ड्रामे का कारण यह है कि लोगों को इस वायरस के प्रसार के तरीक़े और सामान्य प्रवृत्तियों के बारे में जानकारी नहीं है।[115] ऐसी दर्जनों बीमारियाँ है, जो अंग्रेज़ी चिकित्सा विज्ञान में ला-इलाज हैं।[116] देशी चिकित्सा में भी इनमें अधिकतर का कोई इलाज उपलब्ध नहीं है। इनमें विभिन्न प्रकार के कैंसर, अस्थमा, डेंगू, फेटल इंसोम्निया, ब्रेन ईटिंग अमीबा, नेगलेरिया फ़ाउलरली, प्रोगेरिया, व अधिकांश जेनेटिक बीमारियाँ भी इसी श्रेणी में आती हैं। बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश में सैंकड़ों ग़रीब बच्चों की जान लेने वाला चमकी बुख़ार (एक्यूट इंसेफेलाइटिस सिंड्रोम) भी आज तक ला-इलाज है। अभी तक इसके कारण का भी सही-सही पता नहीं लगाया जा सका है, जबकि हिंदी पट्टी में यह हर साल एक से 15 वर्ष के उम्र के हज़ारों बच्चों को अपना शिकार बनाता है, जिनमें सैकड़ों बच्चों की चंद दिनों में ही मौत हो जाती है। इस रहस्यमयी बुख़ार के कारण 'बच्चों के दम तोड़ने का सिलसिला 24 वर्षों से जारी है। ज़्यादातर डॉक्टर बच्चों में लक्षण के आधार पर इलाज करते हैं। लेकिन सही विषाणु का पता न चलने से इलाज सफल नहीं हो पाता। दो दशक से ज़्यादा बीत चुके हैं, लेकिन वहाँ के भूगोल, जलवायु और वहाँ मौजूद कीटों के साथ इस चमकी बुख़ार का कोई अध्ययन नहीं किया गया है।'[117]

अतिरिक्त मौतें और व्याख्या की राजनीति

कोविड-19 से हुई मृत्यु को साबित करने के लिए 'अतिरिक्त मौतों' के आँकड़ों का भी सहारा लिया जा रहा है। 'अतिरिक्त मृत्यु दर' का अर्थ है किसी भी कारण से मरने वाले लोगों की कुल संख्या और एक ही स्थान और वर्ष में मरने वालों के ऐतिहासिक औसत के बीच का अंतर। कुछ संस्थाओं ने इससे संबंधित आँकड़े जमा किये हैं। यूरोमोमो नामक संस्था ने युरोप के 24 देशों में हुई 'अतिरिक्त मौतों' के आँकड़े संकलित किये हैं। उन्होंने इसकी तुलना वर्ष 2009 से 2019 के बीच इसी अवधि में होने वाली मृत्यु की औसत संख्या से की है। इससे यह अंदाज़ा लगाया जाता है कि पिछले दस सालों की तुलना में इस अवधि में कितने ज़्यादा लोगों की मौत हुई। यूरोमोमो के अनुसार इन देशों में 16 मार्च, 2020 से 19 अप्रैल, 2020 के बीच पिछले 10 वर्षों के औसत की तुलना में 1 लाख 20 हज़ार लोगों की 'अतिरिक्त मृत्यु' हुई।

द *इकॉनामिस्ट* सहित कई मीडिया समूहों ने यूरोमोमो द्वारा जारी उपरोक्त आँकड़ों की अपने-अपने तरीक़े से व्याख्या की है। द *इकोनॉमिस्ट* ने जब इसका मिलान उन देशों में कोविड-19 से हुई मृत्यु के आँकड़ों से किया, तो उसने पाया कि कोविड-19 से मरने वालों की संख्या हर जगह इससे कम है। मसलन, इंग्लैंड और वेल्स में 14 मार्च से 17 अप्रैल के बीच कुल 19,088 लोग कोविड-19 से मरे, लेकिन वहाँ अब तक हुई 'अतिरिक्त मौतों' की संख्या 27,035 है। इसी प्रकार, स्पेन में लगभग इसी अवधि में 18,021 लोग कोविड-19 से मरे, जबकि अतिरिक्त मौतों की संख्या 26,844 थी। नीदरलैंड में तो सिर्फ़ 3,664 लोग कोविड-19 से मरे, जबकि अतिरिक्त मौतों की संख्या 7,569 रही। दोगुने से भी ज़्यादा! द *इकॉनॉमिस्ट* के अनुसार, इटली में भी यह अंतर लगभग दोगुने का रहा। इंग्लैंड और वेल्स में इस अवधि में औसत से अधिक 7,947 लोग ऐसे मरे; जिन्हें कोविड-19 नहीं था। स्पेन में बिना कोविड-19 वाली अतिरिक्त मौतों की संख्या 8,823, फ्रांस में 2,461, न्युयॉर्क सिटी में 731, बेल्जियम में 358, इस्ताम्बुल में 1,724 तथा नीदरलैंड में 3905 है।[118] इन 'आधिकारिक' आँकड़ों में कोविड-19 के अतिरिक्त औसत से अधिक यह 'अतिरिक्त मृत्यु' किस कारण हुई; यूरोमोमो

---

[115] वही.

[116] https://en.wikipedia.org/wiki/List_of_incurable_diseases

[117] https://www.downtoearth.org.in/hindistory///why-acute-encephalitis-syndrome-not-exist-before-1996-in-muzaffarpur-65136

[118] https://www.economist.com/graphic-detail/2020/04/16/tracking-covid-19-excess-deaths-

ने इस बारे में कुछ नहीं कहा है लेकिन द *इकॉनॉमिस्ट* ने इन आँकड़ों की व्याख्या करते हुए कहा है— हो सकता है कि अनेक ऐसे लोग भी मरे हों, जिन्हें कोविड-19 हो, लेकिन जिनकी जाँच न हो पाई हो।[119] यह कुछ मामलों में हो सकता है। लेकिन युरोप के सम्पन्न देशों में इसकी सम्भावना कम ही होती है।

यूरोमोमो द्वारा प्रस्तुत आँकड़ों की एक दूसरी सीधी और सच्ची व्याख्या भी हो सकती है। चूँकि तिथियों पर ध्यान देने पर पता चलता है कि इन्हीं तिथियों के आसपास इन देशों में लॉकडाउन की शुरुआत हुई, इसलिए ग़ैर-कोविड-19 अतिरिक्त मौतें लॉकडाउन के कारण हुई हैं। लॉकडाउन ने अस्पतालों के आउट पेशेंट विभाग (ओपीडी) बंद करवा दिये। कैंसर, हृदय रोग, किडनी की बीमारी आदि से पीड़ित लोगों का इलाज होना बंद हो गया। तनाव और अनिश्चितता बढ़ गयी, इसलिए स्वाभाविक तौर पर कोविड-19 के अतिरिक्त हुई मौतों का प्रतिशत भी बढ़ गया। यह व्याख्या अधिक सटीक इसलिए है, क्योंकि इसी आँकड़े में हम देखते हैं कि स्वीडन में, जहाँ लॉकडाउन नहीं था, औसत से अधिक होने वाली अतिरिक्त मौतों की संख्या बहुत कम है। स्वीडन में 18 मार्च, 2020 से 14 अप्रैल, 2020 के बीच 1509 लोग कोविड-19 से मरे, और औसत के अतिरिक्त होने वाली मौतों की संख्या 1677 रही। यानी, सिर्फ़ 168 ज़्यादा। हालाँकि ग्राफ़ में यह छोटा उतार-चढ़ाव संयोग भी हो सकता है, लेकिन हम यह भी कह सकते हैं कि वे 168 अतिरिक्त मौतें भी इसलिए हुईं क्योंकि स्वीडन में भी ग़ैर-कोविड-19 रोगियों के अस्पताल जाने को लेकर कुछ बंदिशें थीं।

इन बातों के साथ हमें यह भी याद रखना चाहिए आँकड़ों का संकलन सिर्फ़ तकनीकी नहीं, बल्कि राजनीतिक काम है।

जैसा कि हमने पहले देखा, ग़रीबों को मारने वाली बीमारियों के आँकड़ों को प्रकाश में आने से रोकने के लिए क़दम उठाए जाते हैं। उन्हें प्राय: छुपाया जाता है, या बहुत आवश्यक होने पर इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि उनसे समाज में कोई उद्वेलन पैदा न हो। आँकड़ों की व्याख्या तो और भी राजनीतिक काम है। अगर ठीक मंशा से प्रयुक्त न हों तो गणित और सांख्यिकी की यह राजनीति समस्याओं की सटीक पहचान और निदान की जगह अनुपातहीन भय, राजनीतिक निरंकुशता और सामाजिक अराजकता का कारण बन सकती है।[120] इससे कोविड-19 काल में हम, भय के सहारे राजनीतिक निरंकुशता का दौर शुरू होता हुआ महसूस कर रहे हैं। अगर इस भय से मुक्ति नहीं मिली, तो अफ्रीकी देश कांगो में इबोला के दौरान फैली अराजकता जैसा दौर भारत समेत कई देशों में शुरू हो सकता है।[121]

अनुपातहीन भय के कथा-सूत्र

दुनिया में फैली अनेकानेक बीमारियों से कोविड-19 की तुलना करने पर पता चलता है कि इसका भय अनुपातहीन और अतिरेकपूर्ण है। आँकड़ों के संकलन की जो पद्धति अभी उपयोग में लाई जा रही है उससे आने वाले दिनों में इस बीमारी के संक्रमण और इससे होने वाली मौतों की कथित संख्या में और इज़ाफ़ा होगा। इनमें एक बड़ी संख्या ऐसे लोगों की होगी, जिनकी मौत किसी और कारण से हुई होगी। लेकिन जिन्हें कोविड-19 के नाम पर दर्ज किया गया होगा।

---

acrosscountries?utm_campaign=coronavirus-special-edition&utm_medium=newsletter&utm_source=sales-force-marketing-cloud&utm_term=2020-05-02&utm_content=cover_text_url_2

[119] वही.

[120] प्रमोद रंजन (2020), 'आँकड़ों की राजनीति और लॉकडाउन से होने वाली मौतें', *जनचौक* (वेब-पोर्टल), 10 जून.

[121] कांगो में ईबोला फैलने के बाद शुरू हुए भ्रष्टाचार और पुलिस व सेना द्वारा बीमारी के नाम पर की गयी ज़्यादतियों ने देश का वातावरण बहुत विषाक्त बना दिया था. इसके चलते सरकार पर लोगों का भरोसा पूरी तरह ख़त्म हो गया था. लोग जगह-जगह ईबोला के लिए बनाए गये उपचार-टीका केंद्रों पर हमला करने लगे थे.

एक दार्शनिक आवाज़ // 2

स्पष्टीकरण

वह समाज ही क्या जिसका ज़िंदा रहने के अतिरिक्त कोई मूल्य न हो ?

जॉर्जो आगाम्बेन

डरने से हमें कुछ ख़ास नहीं मिलता। हाँ, डर हमारे सामने वैसी अनेक चीज़ों को उपस्थित कर देता है जिन्हें हम न देखने का ढोंग करते हैं। रोग की गम्भीरता के बारे में राय व्यक्त करना समस्या नहीं है। समस्या है महामारी के नैतिक और राजनीतिक परिणामों के बारे में पूछना। भय की जिस लहर ने देश को लगभग अपाहिज कर दिया है उससे जो पहली बात हमें पता चलती है वह यह है कि हमारे समाज को केवल और केवल अपना अस्तित्व बचाने की फ़िक्र है। यह साफ़ है कि इतालवी केवल बीमार पड़ने के ख़तरे से बचने के लिए अपना लगभग सब कुछ दाँव पर लगाने को तैयार हैं — सामान्य ज़िंदगी, सामाजिक रिश्ते, काम-काज, मित्रता, प्रेम और धार्मिक और राजनीतिक आस्थाएँ। जीवन की फ़िक्र और उसके खो जाने का ख़तरा लोगों को एक नहीं करता, वह उन्हें अंधा बना देता है, उन्हें दूसरों से दूर कर देता है। अलेस्संद्रो मेनजोनी के उपन्यास में प्लेग का जो वर्णन किया गया है उसी तर्ज पर आज दूसरे मनुष्यों को ऐसे प्राणियों के रूप में देखा जाने लगा है जो हमें प्लेग का रोगी बना सकते हैं और इसलिए उनसे हर हाल में बचा जाना चाहिए और उनसे कम से कम एक मीटर की दूरी बनाए रखी जानी चाहिए। मृतकों— हमारे मृतकों— को अंतिम संस्कार का अधिकार भी नहीं है, और यह साफ़ नहीं है कि जिन्हें हम चाहते हैं, उनके मृत शरीरों का क्या होगा। हमारा पड़ोसी हमारे ज़ेहन से ग़ायब हो गया है और यह अजीब है कि इस मुद्दे पर चर्च चुप्पी साधे हुए हैं। ऐसे देश में, जहाँ लोगों को इस तरह रहने की आदत पड़ जाएगी, वह भी न जाने कितने समय तक— ऐसे देश में मानवीय रिश्तों का क्या होगा? और कैसा है वह समाज जिसके लिए महत्त्व केवल इस बात का है कि उसका अस्तित्व बना रहे।

इस सब की शुरुआत कैसे हुई, भय का ऐसा माहौल कैसे बना और परवान चढ़ा— जिससे पार पाना अब असम्भव लगने लगा है? क्या इसके पीछे किसी 'डीप स्टेट' की योजना या साज़िश है, जैसा कि अमेरिका, युरोप और रूस में लाखों लोग दावा कर रहे हैं?[122] इस प्रकार का दावा करने वालों में कई पर्यावरणविद्, चिकित्सा-विज्ञानी, पत्रकार व अन्य प्रमुख समाजकर्मी भी शामिल हैं।[123] इनमें से अधिकांश का मानना है कि इस खेल के पीछे विश्व के सबसे अमीर व्यक्तियों में से एक माइक्रोसॉफ़्ट के संस्थापक बिल गेट्स और उनकी पत्नी— मेलिंडा गेट्स की पारिवारिक परोपकारिक संस्था बिल ऐंड मेलिंडा गेट्स फ़ाउंडेशन और उनके सहयोगी हैं।[124] इसी प्रकार के कुछ अन्य दावों में कहा गया है कि यह षड्यंत्र स्वास्थ्य-संकट के नाम पर पूरी मनुष्य जाति के डिजिटल सर्विलांस और वैश्विक डिजिटल इकोनॉमी के निर्माण के लिए रचा जा रहा है। कुछ दावे इस बात के भी हैं कि इसके कर्ताधर्ताओं की 'विश्व दृष्टि' में ग़रीब और 'अनुत्पादक' लोगों की भारी जनसंख्या ही दुनिया को 'स्वावलम्बी' बनाने में सबसे बड़ी बाधक है, इसलिए वे इनकी संख्या को कम करना चाहते हैं। कुछ का कहना है कि ऐसा कोई नॉवेल कोरोना वायरस है ही नहीं, जिसका हौवा बनाया जा रहा है। जबकि

---

[122] https://www.businessinsider.in/politics/news/russia-has-been-accused-by-the-us-of-spreading-conspiracy-theories-that-coronavirus-is-a-biological-weapon-created-by-the-cia-and-now-the-uk-has-set-up-a-unit-to-fight-them/articleshow/74552899.cms

[123] https://youtu.be/T-5Zpmh6yPI

[124] https://greatgameindia.com/italian-politician-demand-bill-gates-arrest-for-crimes-against-humanity/

इतनी ही विचलित करने वाली बात यह है कि इस महामारी से यह साफ़ है कि वे अपवादात्मक हालात, जिनमें जीने की आदत सरकारें हमें डाल रही हैं, सामान्य बन गयी हैं। इसके पहले देश में इससे भी गम्भीर महामारियाँ फैलीं परंतु इस कारण किसी ने ऐसा आपातकाल लागू करने के बारे में सोचा तक नहीं— ऐसा आपातकाल जिसमें हमें कहीं आने-जाने की इजाज़त भी नहीं है। लोग संकट और आपातकाल की स्थितियों में जीने के इतने आदी हो गये हैं कि उन्हें यह भी दिखाई नहीं पड़ रहा है कि उनका जीवन केवल ज़िंदा रहने तक सीमित हो गया है— ऐसा जीवन जिसका न तो कोई सामाजिक आयाम है और ना ही राजनीतिक। जो समाज हमेशा आपातकाल के हालात में रहता है वह कभी स्वतंत्र समाज नहीं हो सकता। हम एक ऐसे समाज में रह रहे हैं जिसने तथाकथित 'सुरक्षित जीवन' की ख़ातिर अपनी स्वतंत्रता की बलि चढ़ा दी है और अपने आप को चिरकाल तक भय और असुरक्षा के बीच जीने के लिए अभिशप्त कर लिया है।

आश्चर्य नहीं कि वायरस से निपटने के लिए जो कुछ किया जा रहा है उसे 'युद्ध' की संज्ञा दी जा रही है। जो आपातकालीन क़दम उठाए गये हैं उन्होंने हमें कर्फ़्यू जैसे हालात में जीने पर मजबूर कर दिया है। ऐसा युद्ध जो एक अदृश्य शत्रु, जो किसी भी व्यक्ति में छिपा हो सकता है, के विरुद्ध लड़ा जा रहा हो, वह युद्ध बेतुका और मूर्खतापूर्ण ही हो सकता है। यह, दरअसल, एक गृहयुद्ध है। हमारा शत्रु बाहर नहीं हमारे अंदर है। जो अभी हो रहा है वह तो विचलित करने वाला है ही; आगे क्या होगा, यह और बड़ी चिंता का विषय है। युद्धों ने अपने पीछे एक बड़ी वैज्ञानिक और तकनीकी विरासत छोड़ी है — काँटेदार तारों से लेकर परमाणु शक्ति तक। इसी तरह, हो सकता है कि यह युद्ध भी अपने पीछे विरासत छोड़ जाए — एक ऐसी दुनिया जिसमें विश्वविद्यालय और स्कूल बंद रहेंगे और अध्ययन-अध्यापन केवल ऑनलाइन होगा, जिसमें लोग राजनीतिक और सांस्कृतिक मुद्दों पर विचार-विनिमय के लिए नहीं मिलेंगे और जिसमें केवल डिजिटल संदेश भेजने पर ज़ोर होगा और मनुष्यों के बीच संबंधों का माध्यम मशीनें होंगी।

(इस स्पष्टीकरण का आधिकारिक अंग्रेज़ी अनुवाद एडम कोट्सको ने किया।)

अनेक का दावा है कि यह प्रयोगशाला में तैयार किया गया जैविक-हथियार है। दूसरी ओर, इन दावों से संबंधित प्रश्नों को कुचलने के लिए कथित 'फ़ैक्ट चेकिंग' संस्थाओं के माध्यम से विश्व-व्यापी अभियान भी चलाया जा रहा है। बहरहाल, उन दावों की पड़ताल को फ़िलहाल हम स्थगित रखते हैं। हम सिर्फ़ उन घटनाओं की किंचित अदृश्य रही कड़ियों को देखने की कोशिश करें, जिनके कारण एक अपेक्षाकृत छोटी बीमारी का भय इतना विशाल हो गया। इस क्रम में हम प्रकारांतर से इसके कारकों को चिह्नित करने की कोशिश करेंगे।

2008 की वैश्विक मंदी के बाद से विश्व स्वास्थ्य संगठन को सदस्य देशों से पहले की तरह आर्थिक मदद नहीं मिल रही है। इस आर्थिक क़िल्लत के बीच गेट्स फ़ाउंडेशन का प्रभाव विश्व स्वास्थ्य संगठन पर बढ़ता गया है। इस साल के आरम्भ तक डब्ल्यूएचओ को अनुदान के रूप में सबसे अधिक धन देने वालों में पहले स्थान पर अमेरिका था, दूसरे स्थान पर गेट्स फ़ाउंडेशन और तीसरे स्थान पर ब्रिटेन था। अप्रैल, 2020 में अमेरिका ने अपनी फ़ंडिंग यह कहते हुए रोक दी है कि डब्ल्यूएचओ चीन का पक्ष ले रहा है।[125] अमेरिका द्वारा पूरी तरह हाथ खींच लिए जाने के बाद अब गेट्स फ़ाउंडेशन डब्ल्यूएचओ का सबसे बड़ा दानदाता है।[126] चूँकि वैश्विक स्वास्थ्य व्यापार को लेकर फ़ाउंडेशन का अपना एजेंडा रहा है तथा वैक्सीन का उत्पादन और बिक्री करने वाली विशाल कम्पनियों में गेट्स फ़ाउंडेशन का भारी निवेश है, इसलिए डब्ल्यूएचओ पर इस फ़ाउंडेशन का प्रभाव अनेक विशेषज्ञों के लिए चिंता का सबब रहा है। दूसरी ओर डब्ल्यूएचओ के मौजूदा प्रमुख डॉ. टेड्रोस की

---

[125] https://www.bbc.com/news/world-us-canada-52289056

[126] https://www.devex.com/news/big-concerns-over-gates-foundation-s-potential-to-become-largest-who-donor-97377

पहचान एक ऐसे कम्युनिस्ट की रही है, जो 'किसी के भी साथ काम कर लेने की प्रतिभा से लैस' होने के साथ-साथ गेट्स फ़ाउंडेशन के अहसानों तले दबे हुए हैं।[127]

अगर घटनाओं को इन तथ्यों के आलोक में देखा जाए तो शायद कुछ गुत्थियाँ खुल सकती हैं।

भयादोहन के इतिहास की एक झलक

चीन में एक नये प्रकार के निमोनिया के फैलने की इक्का-दुक्का ख़बरें 2020 के पहले और दूसरे सप्ताह में आयी थीं, लेकिन दुनिया के अन्य देशों ने भय की पहली बर्फ़ीली लहर 30 जनवरी, 2020 उस समय महसूस की, जब विश्व-स्वास्थ्य संगठन के महानिदेशक डॉ. टेड्रोस ने इसे 'अंतर्राष्ट्रीय चिंता का सार्वजनिक स्वास्थ्य आपात्काल' (पीएचईआईसी) घोषित किया। आपात्काल की घोषणा के बाद व्यक्तियों, समुदायों और देशों का भय बढ़ना स्वाभाविक था। भय के इस माहौल में ज़्यादातर लोग यह सवाल पूछ ही नहीं पाए कि 'अंतर्राष्ट्रीय चिंता के सार्वजनिक स्वास्थ्य आपात्काल' की घोषणा के तकनीकी मायने क्या हैं? इसका इतिहास क्या कहता है, और क्या यह उतना ही निर्विवाद और साफ़-सुथरा है, जितना कि समाचार-माध्यमों में बताया जाता है? इंटरनैशनल हेल्थ रेगुलेशन, 2015 (आईएचआर) डब्ल्यूएचओ का दिशा-निर्देशक संविधान है। इस रेगुलेशन के लागू होने के बाद से डब्ल्यूएचओ ने केवल छह बार इस तरह का आपात्काल घोषित किया है : एच1एन1 इन्फ़्लुएंजा वायरस महामारी (2009), वाइल्ड पोलियो वायरस (2014), अफ्रीका इबोला वायरस का प्रकोप (2014) और ज़िका वायरस का प्रकोप (2018), किवु क्षेत्र में इबोला प्रकोप (2019) और कोविड-19 (2020)।

यह आपात्काल डब्ल्यूएचओ का एक ऐसा अस्त्र है, जिसके उपयोग से उसके लिए फ़ंडिंग के दरवाज़े खुलते हैं। यह 2015 के रेगुलेशन में निर्धारित ख़तरे की सबसे ऊँची आवाज़ में चीख़ती हुई घंटी है; जिसका प्रयोग विवादास्पद रहा है। इसके प्रयोग के बाद डब्ल्यूएचओ के सदस्य देश क़ानूनी रूप से बाध्य हो जाते हैं कि वे बीमारी से संबंधित आँकड़े निर्धारित प्रारूप में चौबीस घंटे के अंदर डब्ल्यूएचओ को दें। साथ ही इसके उपयोग के बाद यात्राओं और व्यापार आदि पर अनेक प्रकार के प्रतिबंध भी लागू होने लगते हैं तथा देशों पर डब्ल्यूएचओ द्वारा निर्धारित प्रविधियों, दवाओं, वैक्सीन आदि के प्रयोग के लिए दबाव बनने लगता है। नतीजतन वैश्विक स्तर पर भ्रष्टाचार का एक विशालकाय तंत्र सक्रिय हो जाता है। कोविड-19 को वैश्विक महामारी घोषित करने के दो दिन बाद ही डब्ल्यूएचओ ने अपने इतिहास में पहली बार ग़ैर-सदस्य संस्थाओं से पैसे लेने की शुरुआत कर दी, जिसे 'कोविड-19 सॉलिडैरिटी रिस्पांस फ़ंड' नाम दिया गया। इसके माध्यम से 67.5 करोड़ अमेरिकी डॉलर उगाहने का लक्ष्य रखा गया। अब दुनिया का कोई भी व्यक्ति, कॉरपोरेशन, फ़ाउंडेशन, या किसी भी प्रकार की संस्था डब्ल्यूएचओ को पैसा दे सकती है। स्वास्थ्य-बाज़ार में शुद्ध मुनाफ़े के लिए बैठी कम्पनियों और संस्थाओं के लिए भी अब कोई बंधन नहीं रहा है।[128]

यह भी ध्यान रखना चाहिए कि कोविड-19 के अनुपातहीन भय से वैक्सीन के कारोबार में लगी बड़ी औषधि कम्पनियों को बेहिसाब लाभ है। जैसा कि *फ़ार्मा : ग्रीड, लाइज, एंड द प्वाइजनिंग ऑफ़ अमेरिका* के लेखक जेराल्ड पोजनर कहते हैं : 'फ़ार्मास्युटिकल्स कम्पनियाँ कोविड-19 को जीवन में एक बार मिलने वाले व्यापारिक मौक़े के रूप में देख रही हैं। यह वैश्विक संकट बिक्री और मुनाफ़े के मामले में इस उद्योग के लिए एक ब्लॉकबस्टर होगा। महामारी जितनी घातक होती है, उन्हें उतना ही अधिक लाभ होता है।'[129] वैसे भी डब्ल्यूएचओ द्वारा तीसरी दुनिया के स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़

---

[127] प्रमोद रंजन (2020), 'भारत में लॉकडाउन, पत्रकारिता और गेट्स फ़ाउंडेशन', *तहलका*, वर्ष 12, अंक 14 (30 जून) : 34.

[128] https://www.who.int/news-room/detail/13-03-2020-who-un-foundation-and-partners-launch-first-of-its-kind-covid-19-solidarity-response-fund

[129] https://theintercept.com/2020/03/13/big-pharma-drug-pricing-coronavirus-profits/

की आशंका कोई नयी बात नहीं है। इस संबंध में कई पुस्तकें, रिपोर्ट व शोध उपलब्ध हैं कि किस प्रकार उसने दवा कम्पनियों के दबाव में अनेक देशों का धन बर्बाद करवाया है।[130] ट्रांस्पेरेंसी इंटरनैशनल ने अपनी ताज़ा रिपोर्ट में कोविड-19 के नाम पर भारी भ्रष्टाचार फैलने की आशंका जताते हुए कहा है कि हमने पिछली वैश्विक स्वास्थ्य आपात स्थितियों— इबोला वायरस और स्वाइन फ़्लू के दौरान देखा है कि दुनिया में ऐसे लोग और संस्थाएँ हैं, जो संकट के समय में दूसरों के दुर्भाग्य से लाभ उठाने का लक्ष्य बना कर चलती हैं।[131] रिपोर्ट में बताया गया है कि 2002 के बाद से अमेरिका ने कोरोना वायरस (कोरोना वायरस से ही होने वाली सार्स और मेर्स बीमारियों समेत) पर शोध में लगभग सत्तर करोड़ डॉलर ख़र्च किये हैं। हाल ही में ब्रिटेन ने कोरोनो वायरस अनुसंधान के लिए दो करोड़ पाउण्ड ख़र्च करने की बात कही है, और युरोपीय संघ ने इससे संबंधित अपना बजट बढ़ाकर 4.75 करोड़ यूरो कर दिया है।[132] इसमें से शोध के नाम पर अधिकांश धन उन निजी संस्थाओं को पहुँच जाएगा, जिन पर बिग फ़र्मा और परोपकार-व्यवसाय से जुड़ी संस्थाओं का मिला-जुला क़ब्ज़ा है।[133]

ट्रांस्पेरेंसी इंटरनैशनल ने अपनी रिपोर्ट में यूएस इंस्टीट्यूट ऑफ़ मेडिसिन द्वारा 2009 में किये गये चर्चित अध्ययन की याद दिलाते हुए कहा है कि निजी संस्थाओं के प्रभाव के कारण चिकित्सा अनुसंधान, शिक्षा और अभ्यास में व्यापक वित्तीय संघर्ष है। निजी अनुसंधान के अध्ययनों से पता चलता है कि नैदानिक परीक्षणों (क्लिनिकल ट्रायल) में अनुकूल परिणाम उत्पन्न करने के लिए डेटा में ही हेरफेर किया जाता रहा है। सार्वजनिक स्वास्थ्य पर निजी उद्योग का यह प्रभाव अनगिनत व्यक्तियों, परिवारों और समुदायों के स्वास्थ्य को ख़तरे में डाल रहा है।[134] इसे समझने के लिए कोविड-19 आने के कुछ महीने पहले की घटनाओं पर नज़र डालना उपयोगी होगा।

डॉ. टेड्रोस जुलाई, 2017 में डब्ल्यूएचओ का महानिदेशक नियुक्त होने के बाद से स्वास्थ्य आपात्काल के प्रावधान का उपयोग करने के लिए बहुत उत्सुक रहे हैं। इंटरनैशनल हेल्थ रेगुलेशन, 2015 (आईएचआर) के तहत सार्वजनिक स्वास्थ्य आपात्काल का प्रयोग 'गम्भीर, अचानक, असामान्य या अप्रत्याशित' स्थितियों में किया जा सकता है। इसकी घोषणा डब्ल्यूएचओ के महानिदेशक के अधिकार क्षेत्र में होती है, लेकिन वे इसकी घोषणा तभी कर सकते हैं, जब विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों वाली 'इमरजेंसी कमेटी' इसकी अनुशंसा करे। इमरजेंसी कमेटी को, आईएचआर में शामिल विशेषज्ञों में रोस्टर के अनुसार चुना जाता है। इस कमेटी में 'रोग-नियंत्रण, महामारी-विज्ञान, वैक्सीन डिवेलपमेंट जैसे क्षेत्रों के अंतर्राष्ट्रीय विशेषज्ञ' होते हैं। इनमें अनेक विशेषज्ञों के हित दवा और वैक्सीन निर्माता कम्पनियों व अन्य व्यापारिक संस्थाओं से जुड़े होते हैं। यही कारण है कि इस समिति की हर बैठक में सबसे पहले सदस्यों को गोपनीयता के कर्तव्य की याद दिलाई जाती है और व्यक्तिगत, वित्तीय या पेशेवर हितों का खुलासा करने के लिए कहा जाता है। बैठक शुरू होने से पूर्व इन हितों का सर्वेक्षण किया जाता है, और कथित तौर पर किसी भी सदस्य का ऐसा कोई हित न पाए जाने के बाद ही बैठक शुरू होती है।[135]

अगस्त, 2018 में अफ्रीका के कांगो के किवु क्षेत्र में इबोला वायरस फैला था। यह एक क्षेत्रीय महामारी थी, जिसके कुछ मामले कांगो के पड़ोसी देशों में भी सामने आये थे। लेकिन डॉ. टेड्रोस चाहते थे कि इसे वैश्विक आपात्काल घोषित कर दिया जाए। जबकि इमरजेंसी कमेटी के कुछ सदस्य इसे लागू करने की अनुशंसा के पक्ष में नहीं थे। कमेटी में भारी बहस और वाद-विवाद हुआ, लेकिन

---

[130] https://www.betterworld.info/health/info-disease/infections/swine-flu-influenza-h1n1/who-criticism
[131] https://www.transparency.org/en/news/corruption-and-the-coronavirus
[132] वही.
[133] https://www.globalpolicy.org/images/pdfs/GPFEurope/Philanthropic_Power_online.pdf
[134] https://www.transparency.org/en/news/corruption-and-the-coronavirus
[135] https://www.who.int/news-room/detail/23-01-2020-statement-on-the-meeting-of-the-international-health-

एक दार्शनिक आवाज़ // 3

विद्यार्थियों के लिए शोक-गीत

जॉर्जो आगाम्बेन

जैसा कि हमें पहले से अंदाज़ा था, अगले साल पढ़ाई ऑनलाइन होगी। अपने आसपास की दुनिया को ध्यान से पढ़ने वाले सभी लोगों को पहले से लग रहा था कि इस महामारी को डिजिटल तकनीकी के प्रसार के लिए बहाने के तौर पर प्रयोग किया जाएगा। यह आशंका सही सिद्ध हो गयी है।

हमें इस बात में बहुत रुचि नहीं है कि इस क़दम से शिक्षा प्रणाली से भौतिक कक्षाएँ (जो अध्यापकों और विद्यार्थियों के पारस्परिक संबंध बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं) ग़ायब हो जाएँगी। इससे भी ज़्यादा गम्भीर बात यह है कि इससे सेमिनारों में समूह चर्चा, जो शिक्षा का सबसे जीवंत हिस्सा था, की गुंजाइश ही समाप्त हो जाएगी। जिस तकनीकी बर्बरता के युग में हम हैं, उसमें हमें महसूस करने के लिए कुछ भी नहीं है। हम एक स्क्रीन के क़ैदी बन गये हैं।

जो कुछ हो रहा है, उसका एक महत्त्वपूर्ण निहितार्थ है जीवन जीने एक तरीक़े के रूप में विद्यार्थी-पन का अंत। यूरोप में युनिवर्सिटीज का जन्म विद्यार्थी-संघों (युनिवर्सिटेट्स) से हुआ था। विद्यार्थी होना, जीवन जीने का एक तरीक़ा था। पढ़ना और लेक्चर सुनना इसका एक हिस्सा था। परंतु अन्य विद्यार्थियों के साथ होने वाला वैचारिक टकराव और उनके साथ विचार-विमर्श इसके कम महत्त्वपूर्ण हिस्से नहीं थे। ये विद्यार्थी सुदूर स्थानों से और दूसरे देशों से भी आते थे। इस पूरी व्यवस्था का विकास एक लम्बे दौर में हुआ परंतु इस पूरी अवधि में उसका सामाजिक आयाम बना रहा। जिसने भी किसी युनिवर्सिटी में पढ़ाया है, वह जानता है कि किस तरह क्लास रूम में दोस्त बनते हैं, किस तरह अपनी-अपनी सांस्कृतिक और राजनीतिक रुचियों के अनुसार, छोटे-छोटे अध्ययन और शोध समूह बन जाते हैं। यह सब, जो लगभग दस सदियों से हो रहा था, आज ख़त्म होने की क़गार पर है। विद्यार्थी अब उस शहर में नहीं रहेंगे जहाँ उनका विश्वविद्यालय है। इसके बदले, वे अपने कमरों में बंद होकर लेक्चर सुनेंगे और उन लोगों से सैकड़ों

तेरह प्रस्तावों और तीन बैठकों के बावजूद इमरजेंसी कमेटी में इस पर मुहर नहीं लग सकी। कमेटी द्वारा आपात्काल की अनुशंसा न करने का मीडिया में ज़ोरदार विरोध किया गया।[136] कमेटी की कार्यप्रणाली में बदलाव करने और इसे पारदर्शी बनाने की माँगें भी उठीं।[137] कहा गया कि देश और संस्थाएँ इस महामारी से निकलने के लिए तब तक मदद के लिए आगे नहीं आएँगे, जब तक इसे 'अंतर्राष्ट्रीय चिंता का सार्वजनिक स्वास्थ्य आपात्काल' न घोषित किया जाए। इन माँगों का इससे कोई ख़ास लेना-देना नहीं था कि बीमारी की घातकता और प्रसार कितना है।

13 जून, 2019 को जेनेवा स्थित डब्ल्यूएचओ मुख्यालय में आयोजित इससे संबंधित एक प्रेस वार्ता में आपात्काल की अनुशंसा न करने वाले इमरजेंसी कमेटी के कार्यकारी अध्यक्ष नार्वे के डॉ. प्रीबेन एविट्सलैंड से तीखे सवाल किये गये। इन प्रश्नों के उत्तर में डॉ. एविट्सलैंड ने आपात्काल के दुष्प्रभावों का ज़िक्र करते हुए कहा कि 'अगर किसी को लगता है कि यह एक वैश्विक आपात्काल है, जिसे देखते हुए हमें यह जोखिम उठाना चाहिए, तो उन्हें हम याद दिलाना चाहेंगे कि हमने पिछले सार्वजनिक स्वास्थ्य आपात्कालों में इससे अंतर्राष्ट्रीय चिंता बढ़ते हुए देखी है। व्यापार आदि पर

---

regulations-(2005)-emergency-committee-regarding-the-outbreak-of-novel-coronavirus-(2019-ncov)

[136] https://www.sciencemag.org/news/2019/06/who-unexpectedly-declines-again-call-ebola-outbreak-global-emergency

[137] https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC6509695/

किलोमीटर दूर होंगे जो कभी उनके सहपाठी हुआ करते थे। छोटे शहर, जो अपने विश्वविद्यालयों के लिए ही प्रसिद्ध थे, उनकी सड़कों से विद्यार्थियों के समूह, जो इन शहरों का सबसे जीवंत हिस्सा थे, ग़ायब हो जाएँगे।

हर उस सामाजिक परिघटना, जो मर जाती है, के बारे में कहा जा सकता है कि वह इसी लायक़ थी। यह निश्चित है कि हमारे विश्वविद्यालय भ्रष्टाचार और विशेषज्ञ अज्ञानियों के अड्डे बन गये थे और उनके अंत का शोक नहीं मनाया जाना चाहिए। परंतु दो बातें पक्की हैं :

- जो प्रोफ़ेसर टेलीमैटिक्स की तानाशाही के आगे दण्डवत् हो रहे हैं और केवल ऑनलाइन कक्षाएँ चलाने के लिए राजी हो रहे हैं, वे उन यूनिवर्सिटी अध्यापकों के समान हैं जिन्होंने 1931 में फ़ासिस्ट सरकार के प्रति वफ़ादारी की शपथ ली थी।[1] (देखें, पाद टिप्पणी) जैसा कि तब हुआ था, अभी भी सम्भावना इसी की है कि हज़ार में से केवल 15 शिक्षक ही इस नयी तानाशाही को क़बूल करने से इंकार करेंगे, परंतु उनके नाम उन 15 शिक्षकों के बराबर हमेशा याद रखे जाएँगे, जिन्होंने तब शपथ नहीं ली थी।
- वे विद्यार्थी जिन्हें पठन–पाठन से सच्चा प्यार हैं उन्हें इन परिवर्तित विश्वविद्यालयों में दाख़िला लेने से इंकार करना होगा और जैसा कि शुरुआत में हुआ था, उन्हें अपने संघ बनाने होंगे। इन्हीं के अंदर, तकनीकी बर्बरता से दूर, पुरानी दुनिया जीवित रह सकेगी और शायद उनमें से ही एक नयी संस्कृति जन्म लेगी— अगर जन्मी तो।

[1] मुसोलिनी के फ़ासीवादी शासन ने इतालवी विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसरों को निष्ठा की शपथ लेने के लिए बाध्य किया था. शपथ में मुसोलिनी द्वारा तानाशाही को स्थापित करने के लिए किये गये अपराधों की पूर्ण स्वीकृति भी निहित थी. कुल बारह सौ शिक्षाविदों में से केवल बारह ने ही अपने क़रियर की क़ीमत पर शपथ लेने से इंकार करने की हिम्मत दिखायी. बावजूद इसके उनमें से अनेक प्रोफ़ेसर फ़ासीवाद के विरोधी थे, या फिर उसके समर्थक नहीं थे। जर्मन इतिहासकार हेल्मुट गोएत्ज़ ने 'मुक्त आत्मा और उसके विरोधी : 1931 में इतालवी विश्वविद्यालयों में शपथ लेने वाले' (1993) शीर्षक शोध-ग्रंथ में इस घटना का विस्तार से ज़िक्र किया है. उनकी इस पुस्तक के प्रकाशन के बाद शपथ न लेने वाले प्रोफ़ेसरों के नाम फ़ासीवाद के विरोध के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में दर्ज हो गये। दिलवाई गयी शपथ इस प्रकार थी — 'आई स्वैर फ़िडेलिटी टू द किंग, टू हिज़ रॉयल सक्सेसर्स ऐंड टू द फ़ासिस्ट रिजीम, ऐंड आई स्वैर टू रिस्पेक्ट द (नैशनल फ़ासिस्ट पार्टीज़) स्टेचू ऐंड द अदर लॉज़ ऑफ़ द स्टेट, ऐंड टू फ़ुलफ़िल माई टीचर्स ऐंड आल एकेडेमिक्ज़ ड्यूटीज़ विद द एम ऑफ़ प्रिपेयरिंग इंडस्ट्रियस ऐंड राइटस सिटीज़ंस, पैट्रियोटिक ऐंड डिवोटिड टू द फ़ासिस्ट रिजीम. आई स्वैर नॉट टू बी ऑर ईविन बिकम अ मेम्बर ऑफ़ ऑर्गनाइज़ेशंस ऑर पार्टीज़ हूज़ एक्टिविटीज़ ऑर इनकॉम्पेटिबिल विद माई ऑफ़िशियल ड्यूटीज़।'

प्रतिबंध लगने लगते हैं। हमने एयर लाइनों को उड़ानें रद्द करते हुए और सीमाओं को सील किये जाते हुए भी देखा है। सीमा पर लगाए जाने वाले ये प्रतिबंध अर्थव्यवस्था को गम्भीर रूप से नुक़सान पहुँचा सकते हैं। इसी कारण कमेटी का विचार है कि 'अंतर्राष्ट्रीय चिंता का सार्वजनिक स्वास्थ्य आपात्काल' घोषित करने से वास्तव में कुछ भी हासिल होने वाला नहीं है, लेकिन इसके कारण खोने के लिए बहुत कुछ है।'[138] इसी प्रसंग पर विश्व प्रसिद्ध स्वास्थ्य जर्नल द *लांसेट* में 18 जून, 2019 को एक नाराज़गी भरा सम्पादकीय 'सार्वजनिक स्वास्थ्य आपात्काल की राजनीति' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। सम्पादकीय में इस बात पर दुख प्रकट किया गया कि डब्ल्यूएचओ के महानिदेशक डॉ. टेड्रोस द्वारा इसे एक आपात स्थिति मानने के बावजूद इमरजेंसी कमेटी इसे आपात्काल घोषित करने की अनुशंसा नहीं कर रही है तथा कह रही है कि इससे होने वाले आर्थिक नुक़सान फ़ायदों पर भारी पड़ेंगे। लेकिन हम इससे सहमत नहीं हैं। कमेटी का फ़ैसला तकनीकी पहलुओं से अधिक राजनीतिक पहलुओं को ध्यान में रखने वाला है। यह एक बड़ी ग़लती है। हाँ, यह ज़रूर है कि वैश्विक रूप से राजनीतिक और आर्थिक सहयोग की बहुत आवश्यकता है, जो कि आपात्काल घोषित होने से ही हासिल होगा।[139] दरअसल, जैसा कि द *लांसेट* ने अपने सम्पादकीय के शीर्षक में स्वीकार किया, डब्ल्यूएचओ का स्वास्थ्य

[138] https://www.who.int/news-room/detail/13-06-2019-emergency-committee-press-conference---14-june-2019
[139] https://www.thelancet.com/pdfs/journals/lancet/PIIS0140-6736(19)31406-0.pdf

आपात्काल एक मुकम्मल 'राजनीति' है, जिसके तहत स्वास्थ्य-संकट का इस्तेमाल राजनीतिक और आर्थिक सहयोग पाने के लिए तथा प्रभावशाली देशों द्वारा कमज़ोर देशों पर वर्चस्व स्थापित करने के लिए किया जाता रहा है। इसकी आड़ में पर्दे के पीछे से कई प्रकार के हित साधे जाते हैं। जैसे-जैसे डब्ल्यूएचओ पर निजी संस्थाओं का शिकंजा कसता गया है, वैसे-वैसे पर्दे के पीछे ये खेल मानव जाति के लिए अधिकाधिक होते गये हैं।

किवु क्षेत्र में इबोला मामले में आपात्काल न लगाए जाने के पक्षधर लोगों में से एक डब्ल्यूएचओ के 'संक्रामक ख़तरों के लिए रणनीतिक और तकनीकी सलाहकार समूह' के सदस्य स्वीडन के महामारी विशेषज्ञ जोहान गिसेके भी थे। उन्होंने उपरोक्त सम्पादकीय का उत्तर समूह के सभी 13 सदस्यों की ओर से द *लांसेट* में ही एक लेख लिख कर दिया। जोहान गिसेके ने अपने लेख में कहा कि 2015 में लागू इंटरनैशनल हेल्थ रेगुलेशन संक्रामक बीमारियों से बचने के लिए देशों की सीमाओं को सील करने व अन्य प्रकार के प्रतिबंध लगाने को उचित नहीं मानता, बल्कि रेगुलेशन की भावना है कि प्रतिबंधों की जगह उन मूल क्षमताओं को बढ़ाया जाए ताकि निगरानी और रिस्पॉन्स के लिए बेहतर तैयारी की जा सके। लेकिन पिछले दो स्वास्थ्य आपात्काल के दौरान इस भावना का पालन नहीं हो सका, इसलिए इनके कारणों की पड़ताल के लिए डब्ल्यूएचओ द्वारा समीक्षा बैठकों का आयोजन किया गया। इनमें सदस्य देशों ने डब्ल्यूएचओ से यह अनुरोध किया था कि उसे अपनी जोखिम मूल्यांकन की पद्धति की निगरानी करने के लिए एक स्वतंत्र निकाय का गठन करना चाहिए। इसके परिणामस्वरूप संक्रामक ख़तरों के लिए रणनीतिक और तकनीकी सलाहकार समूह का गठन किया गया (जिसके हम लोग सदस्य हैं)। उन्होंने लिखा कि (स्वास्थ्य आपात्काल का दुनिया की समाज और अर्थव्यवस्था पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ सकता है, इसलिए सभी लोगों को) 2015 के रेगुलेशन में मौजूद बातों को देखना चाहिए जो स्वास्थ्य आपात्काल और व्यापार के संबंध पर प्रकाश डालते हैं। साथ ही अंतर्राष्ट्रीय क़ानूनों के इस बेहद शक्तिशाली साधन का उपयोग करने से पहले इसके जोखिमों और लाभों को अच्छी तरह पहचानना चाहिए। अगर इन बातों को ध्यान में रखे बिना आपात्काल का प्रयोग किया जाएगा, तो भविष्य में इस प्रावधान का प्रभाव न सिर्फ़ स्वास्थ्य क्षेत्र में बल्कि व्यापक समाज में भी ख़त्म हो जाएगा।[140]

यह स्वाभाविक ही है कि कोविड-19 के इस समय में उपरोक्त पंक्तियों को लिखने वाले जोहान गिसेके अपने देश स्वीडन की 'नो-लॉकडाउन' नीति के नायक बन कर उभरे।[141] इन प्रसंगों को जानना इसलिए आवश्यक है, ताकि हम समझ सकें कि जिस स्वास्थ्य-आपात काल को निरापद रूप में प्रचारित किया जा रहा है, उसे लेकर महामारी विशेषज्ञों के बीच भी कैसी तीखी बहसें रही हैं। इन बहसों के पीछे अक्सर चिकित्सा-विज्ञानियों की संवेदनशील और समाजोन्मुख भूमिका प्रमुख रही है। वे अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में कमज़ोर देशों को बचाने और विशालकाय दवा-कम्पनियों, जिन्हें बिग फ़ार्मा के नाम से भी जाना जाता है, द्वारा प्रायोजित और अतिशयोक्ति पूर्ण ढंग से व्याख्यायित स्वास्थ्य संकट को उसके वास्तविक रूप में रखने की कोशिश करते रहे हैं। हालाँकि इस संघर्ष में अधिकतर उन्हें हार का ही सामना करना पड़ता है, क्योंकि तकनीकी पहलुओं से अनभिज्ञता के कारण न उनके पक्ष में नागरिक-समुदाय खड़े होते हैं, न ही उन्हें मीडिया का नैतिक सम्बल मिल पाता है। इसके विपरीत भयादोहन करने वाली शक्तियों को हर ओर से समर्थन हासिल हो जाता है। बहरहाल, उपरोक्त किवु इबोला मामले में स्वास्थ्य आपात्काल घोषित करने के लिए इमरजेंसी कमेटी की चार बैठकें हुईं। 17 जुलाई, 2019 की चौथी बैठक में इमरजेंसी कमेटी ने स्वास्थ्य आपात्काल घोषित करने की

---

[140] https://www.thelancet.com/journals/lancet/article/PIIS0140-6736(19)31566-1/fulltext#%20

[141] https://janchowk.com/beech-bahas/difference-between-invisible-pandemic-and-political-cultures/

अनुशंसा की। लेकिन यह एक अजीब घोषणा थी। इमरजेंसी कमेटी के अध्यक्ष ने प्रेस कॉन्फ्रेंस में कहा कि 'यह एक क्षेत्रीय आपातकाल ही है और इससे कोई वैश्विक ख़तरा नहीं है, लेकिन हम इसे 'अंतर्राष्ट्रीय चिंता का सार्वजनिक स्वास्थ्य आपातकाल' घोषित करते हैं।'[142] साथ ही कमेटी ने कहा कि इस स्वास्थ्य आपातकाल के बावजूद 'किसी भी देश को अपनी सीमाएँ बंद नहीं करनी चाहिए और न ही यात्रा और व्यापार पर कोई प्रतिबंध लगाना चाहिए। आमतौर पर इस तरह के उपाय अनावश्यक डर के कारण अपनाए जाते हैं। विज्ञान में इसका कोई आधार नहीं है। इस तरह के प्रतिबंध लोगों और सामानों की आवाजाही को अनौपचारिक (समाचार माध्यमों के शब्दों में कथित तौर पर ग़ैर-क़ानूनी) तरीक़े से सीमा पार करने के लिए मजबूर करते हैं। इस प्रकार की अनौपचारिक आवाजाही की निगरानी नहीं होती, जिससे बीमारी के फैलने की सम्भावना बढ़ जाती है। इतना ही नहीं, अधिकांश मामलों में ये प्रतिबंध स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं को गम्भीर रूप से नुक़सान पहुँचाते हैं। इनसे बीमारी के निवारण पर नकारात्मक असर पड़ता है।'[143] तत्कालीन इमरजेंसी कमेटी ने उस समय जो कहा था, वह महामारी को रोकने के लिए लगाए जाने वाले प्रतिबंधों और अफ़रातफ़री को समझने की दृष्टि प्रदान करता है। साथ ही वह यह भी ध्यान दिलाता है कि कोविड-19 के दौरान अंततः इस दृष्टि की सुनियोजित तरीक़े से हत्या कर दी गयी।

कैसे शुरू हुआ भय का खेल

अब हम देखें कि कोविड-19 को स्वास्थ्य आपातकाल घोषित करने के लिए गठित इमरजेंसी कमेटी ने किस प्रकार काम किया। कोविड-19 को भी स्वास्थ्य आपातकाल घोषित करने के लिए गठित इमरजेंसी कमेटी की पहली बैठक 22 जनवरी, 2020 को हुई। इस दौरान कमेटी के सदस्यों में आपातकाल की घोषणा को लेकर मतभेद चलते रहे, लेकिन कुल मिला कर कमेटी ने कहा कि मौजूदा स्थिति आपातकाल की नहीं है। आने वाले कुछ दिनों में अगर नये तथ्य प्राप्त होते हैं, तो कमेटी की बैठक फिर बुलाई जा सकती है। लेकिन महानिदेशक डॉ. टेड्रोस इससे सहमत नहीं हुए। उन्होंने अगले ही दिन फिर बैठक की ज़रूरत पर बल देते हुए कहा कि इस बीच (22 जनवरी को ही) चीन में कोविड-19 की रोकथाम के लिए नये क़दम उठाए गये हैं और वहाँ अनेक नये मामले सामने आये हैं।[144] 23 जनवरी को फिर एक बैठक की गयी। इसी दिन से पहली बार चीन के वुहान में सार्वजनिक वाहनों के परिचालन व वहाँ से बाहर जाने वाली सभी उड़ानों पर प्रतिबंध लगा दिया गया।[145] यह कोविड-19 के मामले में दुनिया का पहला लॉकडाउन था। इस बैठक में चीन के अधिकारियों ने बताया कि उनके देश में कोविड-19 के मामले तेज़ी से बढ़ रहे हैं तथा मृत्यु दर 4 प्रतिशत (557 में से 17 की मौत) रही है। उन्होंने यह भी बताया कि रोग की रोकथाम के लिए वुहान में बहुत कड़े प्रतिबंध लगाए गये हैं। इसके बाद डब्ल्यूएचओ सचिवालय ने कमेटी के सदस्यों को जापान, कोरिया, थाईलैंड और सिंगापुर में सामने आये मामलों के बारे में बताया। साथ ही कमेटी को यह भी बताया गया कि कोविड-19 की संक्रमण दर 1.4-2.5 है और सामने आये कुल मामलों में केवल 25 प्रतिशत ही गम्भीर प्रकृति के हैं। लेकिन इन दलीलों का कमेटी के कई सदस्यों पर कोई ख़ास असर नहीं पड़ा। हालाँकि कमेटी का मत विभाजित था, लेकिन कुल मिला कर कमेटी ने स्वास्थ्य आपातकाल की अनुशंसा करने से इंकार कर

---

[142] https://www.latimes.com/science/story/2019-07-17/ebola-outbreak-congo-global-health-emergency
[143] https://www.who.int/news-room/detail/18-10-2019-statement-on-the-meeting-of-the-international-health-regulations-(2005)-emergency-committee-for-ebola-virus-disease-in-the-democratic-republic-of-the-congo
[144] https://www.who.int/news-room/detail/23-01-2020-statement-on-the-meeting-of-the-international-health-regulations-(2005)-emergency-committee-regarding-the-outbreak-of-novel-coronavirus-(2019-ncov)
[145] https://twitter.com/ChinaDaily/status/1220052882596286465

दिया। कमेटी ने कहा कि स्वास्थ्य आपात की प्रतिबंधात्मक प्रकृति और बहुआयामी प्रभाव (दुष्प्रभाव) को देखते हुए इसके लिए जल्दबाज़ी करना ठीक नहीं है। कमेटी का कहना था कि इस मामले में दस दिन बाद फिर एक बैठक बुलाई जा सकती है। और अगर महानिदेशक आवश्यक समझें, तो यह बैठक उससे पहले भी आयोजित की जा सकती है। कमेटी ने इस बैठक में यह बात रेखांकित की थी कि 'स्वास्थ्य आपात्काल लागू किया जाए या नहीं', इस प्रश्न की बजाय डब्ल्यूएचओ को एक ऐसी प्रणाली विकसित करने पर विचार करना चाहिए, जिससे मध्यवर्ती स्तर की चेतावनी दी जा सके तथा बीमारी के प्रकोप की गम्भीरता, उसके प्रभाव और निदान के तरीक़ों को बेहतर ढंग से बताया जा सके। कमेटी का यह भी मानना था कि इस प्रणाली को अनुसंधान के प्रयासों व दवाओं, वैक्सीन, पीपीई आदि के विकास में समन्वयकारी भूमिका निभानी चाहिए।[146]

इस बैठक के सात दिन बाद डॉ. टेड्रोस ने 30 जनवरी को फिर से कमेटी की बैठक बुलायी। इस बैठक में चीन के अधिकारियों ने बताया कि उनके देश में कोविड-19 के 7,711 पुष्ट और 12,167 संदिग्ध मामले हो गये हैं और 170 लोगों की मौत हो चुकी है। डब्ल्यूएचओ सचिवालय ने कमेटी को बताया कि चीन के बाहर भी 18 देशों में 83 मामले सामने आये हैं। हालाँकि चीन से बाहर इक्का-दुक्का मामले ही सामने आये थे, जो आपात्काल जैसे क़दम को तर्कसंगत ठहराने के लिए पर्याप्त नहीं थे। इसके बावजूद बाह्य और आंतरिक दबावों से घिरी कमेटी ने इस दिन आपात्काल की अनुशंसा कर दी। लेकिन उसकी अनुशंसा में उपरोक्त मतभेदों की स्पष्ट छाया बनी रही। दोनों प्रकार के मतों के बीच जबरन समन्वय बनाने की कोशिश को मीटिंग के बाद जारी वक्तव्य में भी महसूस किया जा सकता है। एक ओर उन सदस्यों के मत थे, जो आपात्काल को उचित नहीं मान रहे थे, तो दूसरी तरफ़ ऐसे सदस्य थे, जो न सिर्फ़ आपात्काल के समर्थक थे, बल्कि इसके प्रावधानों को कड़ा रखना चाहते थे, ताकि तीसरी दुनिया के देशों में सम्भावित टीकों, डायग्नोस्टिक्स, एंटीवायरल दवाओं और अन्य चिकित्सा पद्धतियों की उपलब्धता सुनिश्चित की जा सके। बैठक में कुछ सदस्यों ने एक बार फिर कहा कि आपात्काल की घोषणा के बावजूद डब्ल्यूएचओ को परस्पर विरोधी प्रभावों वाले, आपात्काल लगाने और अपात-काल न लगाने के बीच रास्ते की तलाश जारी रखनी चाहिए ताकि ऐसे मामलों में एक मध्यवर्ती स्तर का अलर्ट जारी किया जा सके। कमेटी ने यह भी स्पष्ट किया कि 'वर्तमान सूचना के आधार पर किसी भी यात्रा या व्यापार पर प्रतिबंध की सिफ़ारिश नहीं की जा सकती' तथा उसने देशों को आगाह किया कि वे इंटरनैशनल हेल्थ रेगुलेशन, 2015 की भावना के अनुरूप इसका ख़याल रखें कि रोग के बहाने किसी पर कलंक लगाने या किसी प्रकार के भेदभाव को बढ़ाने की कोशिश न की जाए।[147] डॉ. टेड्रोस ने समिति की अनुशंसा के आधार पर उसी दिन आपात्काल की घोषणा कर दी। लेकिन उसके बाद न उन्होंने, न ही उनकी टीम ने इंटरनैशनल हेल्थ रेगुलेशन, 2015 की भावनाओं का ख़याल रखा। आपात्काल की घोषणा के बाद डब्ल्यूएचओ अपनी प्रेस वार्ताओं में लगातार विभिन्न देशों द्वारा लगाए जाने वाले प्रतिबंधात्मक क़दमों की प्रशंसा करती रही, और देशों को कड़े से कड़े क़दम उठाने के लिए उकसाती रही। डब्ल्यूएचओ की ओर से मीडिया को लगातार इस प्रकार की सूचनाएँ दी गयीं मानो महामारी को रोकने का एकमात्र उपलब्ध विज्ञान लॉकडाउन ही रह गया है। जिन देशों ने लॉकडाउन नहीं किया था, उन पर दबाव बनाने, उन्हें जलील करने में भी डब्ल्यूएचओ ने कोई क़सर नहीं छोड़ी। यहाँ तक कि जब भारत में दुनिया का सबसे कड़ा लॉकडाउन हुआ, तो डब्ल्यूएचओ की ओर से प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की प्रशंसा करते हुए कहा गया

---

[146] https://www.who.int/news-room/detail/23-01-2020-statement-on-the-meeting-of-the-international-health-regulations-(2005)-emergency-committee-regarding-the-outbreak-of-novel-coronavirus-(2019-ncov)

[147] https://www.who.int/news-room/detail/30-01-2020-statement-on-the-second-meeting-of-the-international-health-regulations-(2005)-emergency-committee-regarding-the-outbreak-of-novel-coronavirus-(2019-ncov)

कि भारत का लॉकडाउन हमारे दिशा-निर्देशों के अनुरूप 'समयबद्ध, व्यापक और मज़बूत' है।[148] डब्ल्यूएचओ ने भारत ही नहीं, उन सभी देशों की प्रशंसा की जहाँ लॉकडाउन का कड़ाई से पालन किया जा रहा था।

डब्ल्यूएचओ यहीं नहीं रुका। उसने 11 मार्च को कोविड-19 को वैश्विक महामारी घोषित कर दिया। इस घोषणा का कोई नियमसंगत आधार नहीं था। यह सिर्फ़ भय बढ़ाने की एक और कार्रवाई थी, जिससे वैश्विक अफ़रातफ़री अपने चरम पर पहुँच गयी। जैसा कि पहले बताया गया, इंटरनैशनल हेल्थ रेगुलेशन के अनुसार सार्वजनिक स्वास्थ्य आपात्काल (पीएचईआईसी) सबसे ऊँची आवाज़ की वह घंटी है जिसे डब्ल्यूएचओ देशों को सावधान करने के लिए बजा सकता है। लेकिन डब्ल्यूएचओ को इस आवाज़ से संतोष नहीं हुआ। उस ने कोविड-19 को वैश्विक महामारी घोषित करते समय ख़ुद भी कहा कि इस घोषणा से न तो उसके कामों पर कोई असर पड़ेगा, न ही देशों द्वारा कोविड-19 से बचाव के लिए उठाए जा रहे क़दमों में किसी बदलाव की आवश्यकता है। ऐसे में, इसे वैश्विक महामारी क्यों घोषित किया गया, इसका कोई उत्तर डब्ल्यूएचओ के पास नहीं था। इससे संबंधित प्रेस वार्ता में जब एक पत्रकार ने पूछा कि 'वैश्विक महामारी घोषित करने के लिए डब्ल्यूएचओ की आंतरिक प्रकिया क्या है? क्या इस प्रकिया में सदस्य देश भी शामिल होते हैं? तो इस पर डॉ. टेड्रोस व डब्ल्यूएचओ के अन्य वरिष्ठ पदाधिकारी बगलें झाँकने लगे। उन्होंने बताया कि ऐसी घोषणा के लिए 'कोई प्रकिया नहीं है। यह सिर्फ़ स्थिति का वर्णन करने के लिए है।'[149] लेकिन डब्ल्यूएचओ द्वारा यह घोषणा करते ही न सिर्फ़ समाचार-माध्यमों में सनसनी बढ़ी, बल्कि देशों की सीमाएँ भी धड़ाधड़ सील होने लगीं और लॉकडाउन नहीं करने वाले देशों पर दबाव बढ़ गया।

दरअसल, स्वास्थ्य आपात्काल की ही तरह 'वैश्विक महामारी' की घोषणा का इतिहास भी कल्पनातीत वैश्विक भ्रष्टाचार का इतिहास रहा है। लेकिन दुर्भाग्य से इन इतिहासों से हमने कोई सबक़ नहीं लिया। कोविड-19 से पहले डब्ल्यूएचओ ने सिर्फ़ एक बार 2009 में मैक्सिको में फैले स्वाइन फ़्लू को वैश्विक महामारी घोषित किया था। कोविड-19 को लेकर चले घटनाक्रम जैसा घटनाक्रम उस समय भी सामने आया था। उस समय भी स्वाइन फ़्लू से होने वाली मौतों के अनुमान पहले जारी किये गये। उस समय डब्ल्यूएचओ ने भविष्यवाणी की थी कि इससे मरने वालों की संख्या 20 लाख से 70 लाख के बीच होगी। जबकि कुछ संस्थाओं और नामी महामारी विशेषज्ञों का अनुमान था कि इसमें छह से 36 करोड़ लोगों की मौत हो सकती है। और इससे दुनिया की 11 से 21 प्रतिशत आबादी ख़त्म हो सकती है।[150] इन अनुमानों से हड़कम्प मच गया। इसके बाद डब्ल्यूएचओ ने पहले स्वास्थ्य आपात्काल और फिर उसे वैश्विक महामारी घोषित कर दिया। जनवरी, 2009 से यह 'वैश्विक महामारी' 19 महीने चली। अगस्त, 2010 में डब्ल्यूएचओ ने इसके ख़त्म होने की घोषणा की। इस बीमारी के कारण मरने वालों की कुल संख्या महज़ 18 हज़ार रही। मृतकों में भी अधिक संख्या ऐसे लोगों की थी जो पहले से ही किसी गम्भीर बीमारी से पीड़ित थे। इस दौरान दुनिया के कई देशों ने हज़ारों करोड़ डॉलर की वैक्सीन व अन्य चिकित्सा उपकरण ख़रीदे जिनका बाद में कोई भी उपयोग नहीं हो पाया।[151] कई देशों की अर्थव्यवस्था को भारी नुक़सान हुआ। करोड़ों परिवारों ने परेशानियाँ झेलीं। इस प्रकरण के बाद डब्ल्यूएचओ पर आरोप लगे कि वह एंटी-वायरल वैक्सीन बेच कर मुनाफ़ा कमाने की कोशिश में जुटे ड्रग उद्योग के इशारे पर काम कर

---

[148] https://news.un.org/en/story/2020/03/1060132

[149] https://www.who.int/docs/default-source/coronaviruse/transcripts/who-audio-emergencies-coronavirus-press-conference-full-and-final-11mar2020.pdf?sfvrsn=cb432bb3_2

[150] https://academic.oup.com/eurpub/article/22/1/7/489927

[151] https://www.independent.co.uk/life-style/health-and-families/health-news/billions-wasted-on-swine-flu-pandemic-that-never-came-1974579.html

रहा था। बाद में पाया गया कि जो विशेषज्ञ स्वाइन फ़्लू से संबंधित नीतियों के बारे में डब्ल्यूएचओ को सलाह दे रहे थे उनमें से कुछ का घनिष्ठ संबंध टेमी फ़्लू जैसी एंटीवायरल दवा का निर्माण करने वाली कम्पनियों के साथ था। इस तथ्य को बाक़ायदा छिपाया गया था।[152]

ब्रिटिश मेडिकल जर्नल (बीएमजे) के अनुसार उस समय स्वाइन फ़्लू महामारी के लिए टैमी फ़्लू नामक दवा को निर्धारित उपचार बताया गया और इस दवा की ख़रीद और भण्डारण पर 18 अरब अमेरिकी डॉलर का वैश्विक ख़र्च आया। लेकिन चार वर्ष लम्बे क्लिनिकल परीक्षण की समीक्षा के बाद पता लगा कि स्वाइन फ़्लू के इलाज में टैमी फ़्लू का उपयोग पैरासिटामोल से बेहतर नहीं था।[153] लेकिन तब तक उस दवा को बनाने वाली स्विस कम्पनी रॉश मालामाल हो चुकी थी। उस कम्पनी के अतिरिक्त पूरे बिग फ़ार्मा जगत को ही इस वैश्विक महामारी से अप्रत्याशित लाभ हुआ। टैमी फ़्लू कोविड-19 के दौरान भी चर्चा में रहा है।[154] स्वाइन फ़्लू के दौरान हुई कम मौतों और डब्ल्यूएचओ के दवा कम्पनियों से साठगाँठ के आरोपों में घिरने बाद कहा गया कि इससे जिन 18 हज़ार लोगों की मौत हुई है, उनमें वायरस होने की पुष्टि प्रयोगशालाओं द्वारा की गयी है। अन्यथा 'अनुमान' है कि इस दौरान 1.5 लाख से 5.75 लोगों की मौतें स्वाइन फ़्लू से हुई होंगी, जिनका आँकड़ा जमा नहीं किया जा सका।[155]

स्वाइन फ़्लू के दौरान डब्ल्यूएचओ की तत्कालीन महानिदेशक डॉ. मार्गरेट चैन पर यह आरोप भी लगा था कि उन्होंने एक छोटी बीमारी को 'वैश्विक-महामारी' घोषित करने के लिए इसकी परिभाषा में बदलाव करवा दिया। पुरानी परिभाषा के अनुसार केवल ऐसी बीमारी को ही 'वैश्विक-महामारी' घोषित किया जा सकता है जिसमें 'मौतों और बीमारी की संख्या बहुत बड़ी' हो। डब्ल्यूएचओ ने इसकी परिभाषा में बदलाव कर इसे 'नये वायरस की मौजूदगी और लोगों के बीच उसके आसानी से फैलने तथा लोगों में उसके लिए बहुत कम या कोई प्रतिरक्षा नहीं होने' तक सीमित कर दिया। नयी परिभाषा में बड़ी संख्या में मौतों की अनिवार्यता को पूरी तरह ख़त्म कर दिया गया।[156] जून, 2009 में यह बदलाव किया गया और उसी महीने स्वाइन फ़्लू को वैश्विक महामारी घोषित कर दिया गया। परिभाषा में इसी बदलाव के कारण बहुत कम मौतें होने के बावजूद डब्ल्यूएचओ द्वारा 11 मार्च, 2020 को ही, कोविड-19 को वैश्विक महामारी घोषित किया जा सका। स्वाइन फ़्लू-2009 और कोविड-19 में बड़ा अंतर यह रहा है कि उस समय महामारी की परिभाषा बदली गयी थी, इस समय बीमारी और मौतों की परिभाषा में बदलाव किया गया!

विज्ञान के नाम पर सांख्यिकी के करतब

कोविड-19 के भय के अनुपातहीन बनने की प्रकिया में महत्त्वपूर्ण भूमिका रोग से मरने वाले लोगों की संख्या का पूर्वानुमान लगाने वाले सांख्यिकी मॉडल विशेषज्ञों तथा उस संख्या के सहारे मनुष्य जाति की चेतना पर बारम्बार अहर्निश प्रहार करने वाली विशाल टेक कम्पनियों की रही है। वैश्विक महामारी घोषित किये जाने के पाँच दिन बाद 16 मार्च को लंदन के इम्पीरियल कॉलेज के 31 महामारी-मॉडलिंग विशेषज्ञों की एक टीम ने कोविड-19 से मरने वाले लोगों का पूर्वानुमान जारी किया। इस

---

[152]https://abcnews.go.com/Health/SwineFlu/swine-flu-pandemic-world-health-organization-scientists-linked/story?id=10829940

[153] https://www.bmj.com/content/348/bmj.g2524

[154] https://www.punjabkesari.in/national/news/old-medicines-being-used-to-fight-against-corona-1141624

[155] https://www.thelancet.com/journals/laninf/article/PIIS1473-3099(12)70121-4/fulltext

[156] https://www.independent.co.uk/life-style/health-and-families/health-news/billions-wasted-on-swine-flu-pandemic-that-never-came-1974579.html

सांख्यिकी आधारित कंप्यूटराइज़्ड मॉडलिंग के पूर्वानुमान में कहा गया कि अगर 'कोई क़दम नहीं उठाए गये तो' तीन महीने में संक्रमण अपने सर्वोच्च शिखर पर पहुँच जाएगा। ऐसी स्थिति में अकेले अमेरिका में 32 करोड़ लोग कोविड-19 से संक्रमित होंगे, जिनमें 22 लाख लोग कोविड-19 से मारे जाएँगे।[157] 70 वर्ष से अधिक उम्र के 4 से 8 प्रतिशत अमेरिकी ख़त्म हो जाएँगे। अप्रैल आते-आते हालत यह हो जाएगी कि अमेरिका के अस्पतालों में बिस्तरों की माँग आपूर्ति से 30 गुना अधिक होगी। ब्रिटेन में लॉकडाउन न लगाने की स्थिति में इससे मरने वालों की संख्या 5.10 लाख होगी और अगर लॉकडाउन लगाया गया तो इसमें से 2.5 लाख लोगों को बचाया जा सकेगा। दुनिया भर में 4 करोड़ लोग इस बीमारी से मारे जाएँगे। इस टीम का नेतृत्व गणितीय-जीवविज्ञान के प्रोफ़ेसर नील फ़र्ग्युसन कर रहे थे। उन्होंने इन मौतों से बचने के लिए कड़े लॉकडाउन को आवश्यक बताया।[158]

इस पूर्वानुमान के आते ही दुनिया में हड़कम्प मच गया। इससे पहले तक लॉकडाउन को आर्थिक रूप से बहुत नुक़सानदेह बताने वाले अमेरिका के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प की हिम्मत जवाब दे गयी। ब्रिटेन के प्रधानमंत्री बोरिस जॉन्सन 'हर्ड इम्युनिटी' की नीति पर चल रहे थे। लेकिन इतनी बड़ी संख्या में मौतों के पूर्वानुमान ने इन देशों को अपने नागरिकों पर कड़े प्रतिबंध लगाने के लिए विवश कर दिया।[159] इस तरह के कुछ और भी पूर्वानुमान आये, लेकिन सबसे अधिक चर्चा में इम्पीरियल कॉलेज का ही पूर्वानुमान रहा, जिसका असर भारत के राजनेताओं पर भी पड़ा। भारतीय समाचार-माध्यमों ने इम्पीरियल मॉडल के आधार पर अनुमान लगाया कि भारत में इस बीमारी से लगभग 35 लाख लोग कुछ ही महीने में मारे जाएँगे।[160]

इसी के बाद भारत में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 22 मार्च को 14 घंटे के 'जनता कर्फ़्यू' का आह्वान कर अपने इक़बाल का लिटमस टेस्ट किया, और उसकी अप्रत्याशित सफलता के बाद 24 मार्च की रात आठ बजे टीवी पर दिये गये राष्ट्र के नाम एक संदेश में महज़ चार घंटे की छूट देते हुए उसी रात 12 बजे से पूरे देश में वास्तविक 'कर्फ़्यू' जैसे लॉकडाउन का ऐलान कर दिया।[161] यही लॉकडाउन अब अनलॉक के नारे के साथ धीरे-धीरे हटाया जा रहा है, पर वास्तव में इसके प्रतिबंध थोड़े फेरबदल के साथ अभी तक जारी हैं। जन-प्रतिरोध के बग़ैर इसके वापस होने की उम्मीद काफ़ी क्षीण लग रही हैं। इन सबके पीछे वही अथाह भय है जिसे डब्ल्यूएचओ द्वारा घोषित स्वास्थ्य आपात्काल और महामारी-मॉडलिंग विशेषज्ञों ने सृजित किया था, जबकि साबित हो चुका है कि नील फ़र्ग्युसन के पूर्वानुमान न सिर्फ़ ग़लत गणितीय अवधारणाओं पर आधारित थे, बल्कि कहा जा रहा है उनका यह पूर्वानुमान सॉफ़्टवेयर के इतिहास में अब तक की सबसे विनाशकारी ग़लतियों में से एक था।[162] कोविड-19 से होने वाली मौतों के पूर्वानुमान किस क़दर दोषपूर्ण थे, इसके नमूने के तौर पर स्वीडन व कुछ अन्य देशों द्वारा बीमारी से निपटने के तरीक़े में देखा जा सकता है। अपने महामारी विशेषज्ञों जोहान गिसेके और एंडर्स टेगननेल के लोकतांत्रिक व मानवीय सुझावों पर अमल करने वाले स्वीडन ने इस दौरान अपने नागरिकों पर कोई भी दमनकारी प्रतिबंध नहीं लगाया। लोगों को सुरक्षित दूरी का पालन करने व भीड़-भाड़ वाली जगहों से बचने की सलाहों व न्यूनतम प्रतिबंधों के साथ वहाँ स्कूल,

---

[157] https://www.imperial.ac.uk/media/imperial-college/medicine/sph/ide/gida-fellowships/Imperial-College-COVID19-NPI-modelling-16-03-2020.pdf

[158] https://www.cnbc.com/2020/06/10/uk-lockdown-a-week-earlier-could-have-halved-covid-19-death-toll-scientist-says.html

[159] https://www.foxnews.com/world/imperial-college-britain-coronavirus-lockdown-buggy-mess-unreliable

[160] https://www.patrika.com/miscellenous-india/coronavirus-worst-situation-is-near-if-people-don-t-follow-lockdown-5924880/

[161] https://www.youtube.com/watch?v=gck9GkzID8k

[162] https://www.telegraph.co.uk/technology/2020/05/16/neil-fergusons-imperial-model-could-devastating-software-mistake/

कॉलेज, पब-बार, रेस्त्राँ सब खुले रहे। नील फ़र्ग्युसन के मॉडल के आधार पर किया गया पूर्वानुमान था कि अगर स्वीडन में लॉकडाउन नहीं किया गया तो तीन महीने में 90 हज़ार लोगों की मौत होगी और अगर लॉकडाउन किया गया, तो मौतों की संख्या 40 हज़ार पर सिमट जाएगी। लेकिन वहाँ वास्तव में मई के अंत तक यानी तीन महीने में बिना लॉकडाउन के केवल 4,350 मौतों की ख़बर आयी।[163] इनमें से 90 प्रतिशत लोगों की आयु 70 वर्ष से अधिक थी, और वे पहले से ही बुज़ुर्गों के लिए बनाए गये केयर सेंटर्स में रह रहे थे। अन्य देशों की तरह इनमें से अधिकांश लोग अन्य घातक रोगों से पीड़ित थे। अगस्त, 2020 के मध्य तक स्वीडन में लगभग 6 हज़ार लोगों की मौत कोविड-19 के खाते में दर्ज हुई है। जबकि लॉकडाउन के बावजूद ब्रिटेन में मई अंत तक 47 हज़ार से अधिक लोगों की मौत हो चुकी है। यही हाल अमेरिका व उन सभी देशों का भी रहा, जहाँ-जहाँ प्रोफ़ेसर फ़र्ग्युसन की मॉडलिंग के आधार पर लॉकडाउन का निर्णय लिया गया था।

इस पूरे प्रकरण में एक और विडम्बना उभर कर सामने आयी। इंटरनेट के व्यापक प्रसार के बाद यह मान लिया गया है कि कम-से-कम बड़े मुद्दों से संबंधित सूचनाओं के वैश्विक-प्रसार को बाधित किया जाना अब सम्भव नहीं है। प्रोफ़ेसर नील फ़र्ग्युसन के दावों का प्रसार बिजली की गति से हुआ, लेकिन उनके 'दावों का इतिहास' तीसरी दुनिया के देशों तक पहुँचते-पहुँचते कहीं रास्ते में ही गुम हो गया। यह भविष्यवाणी प्रोफ़ेसर फ़र्ग्युसन की पहली भविष्यवाणी नहीं थी। उनकी भविष्यवाणियों का भी एक इतिहास रहा है। इस इतिहास को यहाँ देख लेना प्रासंगिक होगा।[164]

प्रोफ़ेसर नील फ़र्ग्युसन के पूर्वानुमान : 2001 में प्रोफ़ेसर फ़र्ग्युसन के एक शोध के कारण ब्रिटेन में लाखों स्वस्थ पशुओं को मार डाला गया। उस वर्ष वहाँ पशुओं में मुँह और पैरों की महामारी फैली थी। बाद में अनेक अध्येताओं ने अपने शोध में पाया कि फ़र्ग्युसन ग़लत थे और उनके सुझाव के कारण ब्रिटेन के किसानों और पशुपालकों को भारी आर्थिक नुक़सान उठाना पड़ा। स्वस्थ्य पशुओं को अपने सामने नाहक मारे जाते देख लोगों को भावनात्मक धक्का भी लगा। 2002 में फ़र्ग्युसन ने भविष्यवाणी की कि ब्रिटेन में बीमार गायों के मांस के सम्पर्क में आने से 50 से 50,000 लोग मर सकते हैं। उन्होंने भेड़ों में भी महामारी फैलने की भविष्यवाणी की थी तथा यह अनुमान लगाया था कि इससे 1,50,000 लोगों की जान जा सकती है। लेकिन इन बीमारियों से बिट्रेन में 200 से भी कम लोगों की मौत हुई। 2005 में फ़र्ग्युसन ने दावा किया कि दुनिया में बर्ड फ़्लू से 20 करोड़ लोग मारे जा सकते हैं। लेकिन, इस फ़्लू से दुनिया भर में केवल कुछ सौ लोगों की मौत ही हुई। 2009 में इम्पीरियल कॉलेज टीम ने भविष्यवाणी की कि स्वाइन फ़्लू की मृत्यु दर 0.3 प्रतिशत से 1.5 प्रतिशत के बीच है। उनकी सलाह के आधार पर ब्रिटेन की सरकार ने अनुमान लगाया कि इस बीमारी से देश में 65,000 लोगों की मौत हो सकती है, जबकि स्वाइन फ़्लू से वहाँ सिर्फ़ 457 लोगों की मौत हुई और वास्तविक मृत्यु दर 0.026 प्रतिशत रही। मीडिया द्वारा 'प्रोफ़ेसर लॉकडाउन' के नाम से पुकारे गये नील फ़र्ग्युसन कोविड-19 की भयावहता पर कितना यक़ीन करते हैं, इसका अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि वे ब्रिटेन में लागू लॉकडाउन के प्रतिबंधों का ख़ुद ही उल्लंघन कर रहे थे। *द टेलीग्राफ़* ने अपनी एक पड़ताल में पाया कि 'प्रोफ़ेसर लॉकडाउन' एक ओर मीडिया से बातचीत में कड़ी 'सोशल-डिस्टेंसिंग' की वकालत कर रहे थे, तो दूसरी ओर अपनी प्रेमिका से मिलने के लिए लॉकडाउन के नियमों को धता बता रहे थे। वह भी तब जब वे ख़ुद संक्रमण की चपेट में आ चुके

---

[163] https://www.spectator.co.uk/article/why-can-t-neil-ferguson-s-imperial-model-be-replicated-

[164] https://www.telegraph.co.uk/technology/2020/05/16/coding-led-lockdown-totally-unreliable-buggy-mess-say-experts/?li_source=LI&li_medium=liftigniterrhr&utm_medium=email&utm_source=CampaignMonitor_Editorial&utm_campaign=LNCH%20%2020200518%20%20Facebook%20%20SM+CID_c23d298cb2f5f9f63e0f9c9358e149e0

थे।[165] द *टेलीग्राफ़* द्वारा किये गये इस खुलासे के बाद ब्रिटेन में बहुत नाराज़गी फैली, जिसके बाद उन्हें सरकारी सलाहकार पद से इस्तीफ़ा देना पड़ा।[166] लेकिन इस प्रसंग से पता चलता है कि प्रोफ़ेसर नील फ़र्ग्युसन को भान था कि कोविड-19 का संक्रमण जानलेवा नहीं होता। बहरहाल, नील फ़र्ग्युसन के इन फ़र्ज़ी दावों की बाद में मीडिया में ख़ूब चर्चा हुई। द *टेलीग्राफ़, वॉल स्ट्रीट जर्नल* और द *मेल* आदि ने इसके लिए उन्हें आड़े हाथों लिया, लेकिन दूसरी ओर द *गार्डियन* ने उन अख़बारों की लानत-मलामत करते हुए कहा कि 'पत्रकारों और राजनेताओं का एक वर्ग चाहता है कि वह जीवविज्ञान और भौतिक विज्ञान संबंधी नीतियों में भी हस्तक्षेप करे, लेकिन हमें उनकी तर्कहीन दलीलों को ख़ारिज करना होगा। हमें फ़र्ग्युसन जैसे विशेषज्ञों की सलाह पर अमल जारी रखना चाहिए।'[167]

लेकिन इस पूरे वाद-विवाद में यह बात आश्चर्यजनक रूप से ग़ायब रही कि नील फ़र्ग्युसन की इम्पीरियल टीम ने कोविड-19 से संबंधित भविष्यवाणी स्वतंत्र हैसियत से नहीं की थी। ग़ौरतलब है कि उनकी टीम डब्ल्यूएचओ के लिए 'संक्रामक रोग मॉडलिंग के लिए सहयोग केंद्र' के रूप में काम कर रही थी। डब्ल्यूएचओ ने इम्पीरियल कॉलेज के 'वैश्विक संक्रामक रोग चिकित्सा अनुसंधान परिषद केंद्र' का अपने सहयोगी केंद्र के रूप में 30 अप्रैल, 2019 को रजिस्ट्रेशन किया था। यह रजिस्ट्रेशन चार साल के लिए किया गया था। इम्पीरियल कॉलेज स्थित इस केंद्र का निर्धारित काम 'डब्ल्यूएचओ के अनुरोध पर संक्रामक रोग समस्याओं, विशेष रूप से प्रकोप और अंतर्राष्ट्रीय चिंता की घटनाओं का तेज़ी से विश्लेषण करना, मॉडलिंग विशेषज्ञों के बीच समन्वय स्थापित करना है।' इम्पीरियल टीम का डब्ल्यूएचओ से इस सम्बद्धता का पता डब्ल्यूएचओ की विशालकाय वेबसाइट पर हाशिये पर पड़ी एक सूचना से चलता है।[168] लेकिन न तो इम्पीरियल टीम ने यह बात मीडिया को बताई, न ही डब्ल्यूएचओ ने कहा कि यह मॉडलिंग उसके आग्रह पर की गयी है। डब्ल्यूएचओ की कार्यप्रणाली को संदेह के घेरे में लाने वाला यह तथ्य वैश्विक-स्तर पर इतने वाद-विवाद के बावजूद सिरे से ग़ायब रहा है।

न सिर्फ़ प्रोफ़ेसर फ़र्ग्युसन के पूर्वानुमान फ़र्ज़ी साबित हुए, बल्कि पिछले कुछ महीनों में जिन युरोपीय देशों में कोविड-19 से भारी संख्या में मौत होने की छवि हमारे मन में बनाई गयी है, वह भी तुलनात्मक अध्ययन में झूठी पाई गयी। मौतों की सीधी-सादी संख्या की जगह अक्सर लोगों के सामने मृत्यु-दर आदि के खौफ़नाक सांख्यिकीय समीकरण आये हैं तथा कई देशों में कोविड-19 से बड़ी संख्या में मर रहे लोगों की लाशों को समुद्र में फेंके जाने,[169] इटली में नये क़ब्रगाह खोदे जाने[170] की झूठी ख़बरें फैलाई गयी हैं। चीज़ों को बारीकी से समझने के मामले में गणित और सांख्यिकी का अपना महत्त्व है; लेकिन समाज के चक्के की गति न तो प्रतिशत से निर्धारित होती है, न ही उसे चार्ट और ग्राफ़ों में समेटा जा सकता है।

जिन देशों में कोविड-19 से कथित तौर पर सबसे अधिक मौतें हुईं हैं, उनकी सीधी संख्या (लगभग) है : अमेरिका में 1.40 लाख, ब्राज़ील में 70 हज़ार, ब्रिटेन में 45 हज़ार, इटली में 35

---

[165] https://www.telegraph.co.uk/news/2020/05/05/neil-ferguson-architect-lockdown-brought-failing-obey-rules/

[166]https://www.telegraph.co.uk/news/2020/05/05/exclusive-government-scientist-neil-ferguson-resigns-breaking/

[167]https://www.theguardian.com/commentisfree/2020/may/06/neil-ferguson-scientists-media-government-adviser-social-distancing

[168] https://apps.who.int/whocc/Detail.aspx?FJdjEEdrcMNfOU4d+dseSg==

[169] ttps://timesofindia.indiatimes.com/times-fact-check/news/fake-alert-old-video-from-libya-shared-claiming-bodies-of-covid-19-patients-are-thrown-into-sea/articleshow/75199762.cms

[170] https://www.thequint.com/news/webqoof/mass-graves-in-italy-over-covid-19-deaths-no-its-a-movie-scene-fact-check

हज़ार, स्पेन में 30 हज़ार, भारत में 22 हज़ार, ईरान में 12.5 हज़ार, दक्षिण अफ्रीका में तीन हज़ार छह सौ और सऊदी अरब में इक्कीस सौ (मध्य जुलाई तक)। यह संख्या इन देशों में अन्य बीमारियों से होने वाली मौतों की तुलना में कहीं नहीं ठहरती। इसके अलावा यह भी देखने की आवश्यकता है कि इटली, स्पेन और ब्रिटेन जैसे देशों में ज़रा-चिकित्सा के सहारे जी रहे बहुत-से बुज़ुर्ग लोग अपने देशों की उच्च औसत जीवन-प्रत्याशा (79-83 वर्ष) को भी पार कर चुके थे। कुछ शोधों से यह भी स्पष्ट हुआ है अगर इन लोगों को कोरोना वायरस का संक्रमण न भी होता तब भी उनके जीवन में अधिकतम कुछ महीने या कुछ दिन ही बचे होते।

चिकित्सा-विज्ञान मनुष्य को अमर बनाने के अपने सपने के तहत चाहे जो कुछ कहे, समाज अपनी शाश्वत गति को पहचानता है तथा अपनी उम्र जी चुके इन अनमोल रत्नों के चले जाने को असामयिक मृत्यु नहीं मानता। कोविड-19 के मामले में भयादोहन के लिए ऐसे शब्दाडम्बरों का सहारा लिया गया, जिससे यह महसूस हुआ कि इस प्रकार की मॉडलिंग के पूर्वानुमान 'विज्ञानसम्मत' और निर्णायक हैं। न सिर्फ़ सत्ताधारी राजनेताओं ने अपनी जनता पर निरंकुशता थोपते हुए कहा कि उनके क़दम 'विज्ञान द्वारा निर्देशित' हैं, बल्कि समाज के निचले तबक़ों की हिमायत के लिए प्रतिबद्ध राजनीतिक ताक़तों ने भी अपने लोगों के क्रूर दमन को विज्ञान के नाम पर जायज़ ठहराया। क्या इस मॉडलिंग को 'विज्ञान' की श्रेणी में रखा जा सकता है? विशेषज्ञों ने इस पहलू पर भरसक ध्यान खींचने की कोशिश की, लेकिन सूचना-तकनीक की नयी पद्धतियों ने उनकी राय को व्यापक जनसमुदाय तक नहीं पहुँचने दिया। इन विशेषज्ञों की राय है कि मॉडलिंग और इस प्रकार की व्यक्तिपरक राय विज्ञान शब्द का मखौल है।[171]

अगर यह विज्ञान है, तो यह उस ज्योतिष-शास्त्र और तंत्र-विद्या से कम बुरा नहीं है, जिसमें एक ज्योतिष को अनुदान देकर ग्रह-दशाओं की स्थितियाँ बदली जा सकती हैं, और उनकी सुविधाजनक व्याख्याएँ करवा कर घोर अमानवीय निदान सुझाए जा सकते हैं। इन सुविधानजक व्याख्याओं का एक नमूना यह है कि पिछले दिनों इम्पीरियल कॉलेज ने दावा किया कि उसकी मॉडलिंग के कारण हुए लॉकडाउन से तीस लाख लोगों की जान बची है, जबकि मैसाचुसेट्स के अध्ययन का निष्कर्ष है कि लॉकडाउन से कोई फ़ायदा नहीं है, इससे किसी की जान नहीं बचाई जा सकी।[172]

अल्गोरिद्म, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और प्रौद्योगिकी के बड़े खिलाड़ी

मौतों के सांख्यिकी आधारित अनुमानों के अतिरिक्त कोविड-19 के भय को अनुपातहीन बनाने में उन कम्पनियों की बड़ी भूमिका थी, जिन्हें प्रौद्योगिकी-दैत्य (टेक जाइंटस) व बिग टेक के नाम से जाना जाता है। एक मोटे अनुमान के अनुसार आज विश्व के सूचना-तंत्र का कम से कम 95 प्रतिशत हिस्सा इन दैत्य-कम्पनियों— गूगल, अमेज़न, माइक्रोसॉफ़्ट, एपल, फ़ेसबुक, ट्विटर आदि के हाथों में केंद्रित है। इन प्रौद्योगिकी-दैत्यों के जन्म की कहानी अल्गोरिद्म के विकास की कहानी से जुड़ी हुई है, जिसने मशीन लर्निंग और आर्टिफ़िशियल इंटेलीजेंस (कृत्रिम बुद्धि) को जन्म दिया है। अल्गोरिद्म के इस्तेमाल से इन्होंने अपने सोशल मीडिया व सर्च-इंजन जैसे उत्पादों को इस प्रकार विकसित किया है ताकि उसके उपभोक्ता अपने-अपने ईको-चैम्बर में क़ैद रहें। इन ईको-चैम्बरों के लिए अल्गोरिद्म विकसित करते हुए इन कम्पनियों ने सबसे अधिक मनुष्य की आदिम आवश्यकताओं और मनोविज्ञान पर काम किया है। इसके माध्यम से एक सामान्य उपभोक्ता तक सिर्फ़ वही सूचनाएँ पहुँचाई जाती हैं, जिन्हें उसका चेतन अथवा अवचेतन मन पाना चाहता है। भय, जुगुप्सा, काम आदि ऐसे आदिम भाव

[171] डॉजॉनली (2020), 'हाउ स्ट्रॉन्ग वाज़ द साइंटिफ़िक एडवाइज बिहाइंड द लॉकडाउन?', *द स्पेक्टेटर*, 11 जुलाई.
[172] वही.

हैं, जो चाहे-अनचाहे मनुष्य का ध्यान सबसे अधिक आकर्षित करते हैं। पारम्परिक माध्यम जैसे अख़बार, टेलीविज़न आदि व्यक्ति के जीवन में एक क़िस्म का बाहरी हस्तक्षेप होते हैं। इनमें सूचना देने वाला एक बाहरी तत्त्व होता है, जिस पर शक-शुबहा की गुंजाइश रहती है, जबकि सोशल मीडिया पर सूचना लेने और देने वाले अपेक्षाकृत भीतरी लोग होते हैं। इसलिए इनसे प्राप्त सूचनाओं की विश्वसनीयता और इसका असर लोगों पर बहुत गहरा होता है। यही कारण था कि सोशल मीडिया और सर्च-इंजनों के अल्गोरिद्म के कंधों पर सवार हो कर कोविड-19 से होने वाली 'सम्भावित' मौतों के आँकड़े बहुत तेज़ी से लोगों के मस्तिष्कों पर दस्तक देने लगे। इंटरनेट की दुनिया का सबसे बड़ा उपभोक्ता मध्यवर्ग इन आँकड़ों से थर्रा उठा। लेकिन बात सिर्फ़ इतनी नहीं थी कि सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म ने भय के मनोविज्ञान को अनायास ही गति प्रदान कर दी थी। कोविड-19 को वैश्विक महामारी घोषित करने से पहले डब्ल्यूएचओ ने इन प्रौद्योगिकी के इन बड़े खिलाड़ियों के साथ कई बैठकें कीं और यह सुनिश्चित किया कि 'इंफ़ोडेमिक' न फैले। यह एक प्रकार से अपनी नीतियों के विरोध में उठाई जाने वाली आवाज़ों को कुचलने का गठबंधन था।

साक्ष्य बताते हैं कि इसके लिए अल्गोरिद्म में परिवर्तन किया तथा कोविड-19 के भय को कम करके दिखाने वाले या डब्ल्यूएचओ द्वारा निर्धारित लाइन से अलग बात करने वाले तथ्य को सूचनाओं के प्लेटफ़ॉर्म से हटा दिया गया। इतने बड़े पैमाने पर कंटेंट को चुनने और हटाने के लिए आर्टिफ़िशियल इंटलीजेंस का प्रयोग किया गया। फ़ेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम, यूट्यूब आदि ने इस दौरान ऐसे करोड़ों कंटेंट अपने प्लेटफ़ॉर्म से हटाए तथा लाखों लोगों के एकाउंट बंद कर दिये। इनमें प्रमुख चिकित्सा-विज्ञानी, सामाजिक कार्यकर्ता, पत्रकार, पर्यावरणविद् और राजनेता भी शामिल थे। भय को तर्कसंगत सीमा में रखने में सबसे बड़ी बाधा गूगल ने खड़ी की, जिसका सर्च इंजन पिछले वर्षों में ज्ञान के पुस्तकालय की एकमात्र चाबी के रूप में उभरा है। इंटरनेट पर किसी भी सूचना तक पहुँचने के लिए दुनिया के अधिकांश लोग आज गूगल सर्च इंजन का सहारा लेते हैं। सर्च इंजन के वैश्विक बाज़ार में गूगल की हिस्सेदारी 91.89 प्रतिशत है,[173] जबकि भारत में 98.5 प्रतिशत[174] लोग गूगल सर्च इंजन का प्रयोग करते हैं। अपने सर्च इंजन व यूट्यूब जैसे प्रोडक्ट्स के कारण यह फ़ेसबुक, ट्विटर जैसे सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्मों की तुलना में कई गुना अधिक प्रभावी है। गूगल ने ऐसी वेब साइट्स पर लोगों को पहुँचने से रोकना शुरू कर दिया जिस पर दी गयी जानकारी कोविड-19 की भयावहता को कम करती हो, या इसे किसी प्रकार के षड्यंत्र के रूप में देखती हो। इन सभी प्लेटफ़ॉर्मों ने कोविड-19 से संबंधित किसी भी सम्भावित 'सर्च' को डब्ल्यूएचओ अथवा संबंधित देशों के सरकारी सूचना-स्रोतों की ओर भेजना शुरू कर दिया, जो अब भी जारी है। इस कारण भय को वास्तविक ख़तरे के अनुपात में रखने, अथवा कम करने वाली सामग्री तक लोगों की पहुँच लगभग ख़त्म हो गयी।[175] गूगल ने युरोप में लॉकडाउन की शुरुआत होते ही कोरोना वायरस से संबंधित कथित भ्रामक सामग्री को कड़ाई से ब्लॉक करना और झूठी ख़बरों के रूप में चिह्नित करना आरम्भ किया। ऐसी कोई भी सामग्री जिसे गूगल ने 'फ़ाल्स न्यूज़' के रूप में चिह्नित कर दिया हो, उसे सर्च इंजन पीछे धकेल देता है। यहाँ तक कि गूगल ने अपने प्लेस्टोर पर भी सेंसरशिप लागू कर दी, जिसका नतीजा यह हुआ कि कई देशों व महत्त्वपूर्ण संस्थाओं द्वारा जारी कोविड-19 से संबंधित एप भी ब्लॉक हो गये।[176] गूगल की संस्था यूट्यूब ने भी यही किया। उसने उन सभी वीडियो को हटाना शुरू कर दिया, जो विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा कही गयी किसी भी बात के ख़िलाफ़ थे। यूट्यूब

---

[173] https://gs.statcounter.com/search-engine-market-share

[174] https://gs.statcounter.com/search-engine-market-share/all/india

[175] प्रमोद रंजन (2020), 'कोरोना काल में अभिव्यक्ति पर प्रौद्योगिकी का शिकंजा', *जनमीडिया,* वर्ष 09, अंक 99 (जून) : 15.

[176] https://www.news18.com/news/tech/google-doesnt-like-you-searching-for-coronavirus-apps-but-censorship-is-broken-2526573.html

की सीईओ सूज़न वोज्स्की ने एक साक्षात्कार में कहा कि 'यूट्यूब कोरोना वायरस से संबंधित उन सभी वीडियो को अपने प्लेटफ़ॉर्म से हटाएगा, जिससे किसी भी प्रकार की समस्या पैदा होती हो। ... ऐसा कुछ भी, जो मेडिकल साइंस द्वारा प्रमाणित न हो, जैसे विटामिन-सी या हल्दी से वायरस से बचाव होने की बातें जो हमारी नीतियों का उल्लंघन करती हैं। ...ऐसी कोई भी चीज जो विश्व स्वास्थ्य संगठन की अनुशंसा के ख़िलाफ़ जाती हो, वह हमारी नीतियों के भी ख़िलाफ़ होगी।'[177] इस प्रकार यूट्यूब ने अपने दर्शकों को विश्व स्वास्थ्य संगठन की बातों को वेदवाक्य मानने के लिए विवश कर दिया। चूँकि यूट्यूब आज अनेक प्रमुख समाचार चैनलों के प्रसारण का भी एक महत्त्वपूर्ण ज़रिया है, इसलिए लोगबाग़ यूट्यूब पर ऐसी किसी भी बात का प्रसारण करने से बचने लगे जो कोरोना वायरस के बारे में विश्व स्वास्थ्य संगठन की राय के ख़िलाफ़ जाती हो। फ़ॉक्स न्यूज़ समेत अनेक स्वतंत्र मीडिया संस्थानों ने यूट्यूब की इस पॉलिसी की निंदा करते हुए कहा कि उसने विश्व स्वास्थ्य संगठन को अपना गॉस्पल (ईसा मसीह का सुसमाचार) बना लिया है।[178]

ट्विटर ने भी कोरोना महामारी के बारे में 'आधिकारिक' तथ्यों के ख़िलाफ़ जाने वाले ट्वीट को मशीन लर्निंग और ऑटोमेशन के ज़रिये हटाया। इनमें से एक वीडियो-ट्वीट भारतीय अभिनेता और राजनेता रजनीकांत का भी था, जिसमें उन्होंने प्रधानमंत्री द्वारा आहूत 14 घंटे के जनता-कर्फ़्यू की अपील को उचित बताते हुए कहा था कि 'वायरस के प्रसार पर अंकुश लगाने के लिए 14 घंटे की सामाजिक दूरी आवश्यक है।' लेकिन ट्विटर के आर्टिफ़िशियल इंटेलीजेंस ने उनकी इस बात को शायद इसलिए अवैज्ञानिक पाया क्योंकि डब्ल्यूएचओ की गाइड-लाइन के अनुसार 14 घंटे की सामाजिक दूरी वायरस से बचाव के लिए पर्याप्त नहीं है।[179] ट्विटर ने एक ब्लॉग-पोस्ट में स्वयं बताया है कि उसने जनवरी में विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा नये वायरस की बीमारी को कोविड-19 नाम देने से छह दिन पहले ही अपने सिस्टम में बदलाव शुरू कर दिया था, ताकि 'जब आप इसके बारे में जानकारी के लिए हमारे प्लेटफ़ॉर्म पर आएँ तो आपको अपनी खोज के शीर्ष पर विश्वसनीय, आधिकारिक सामग्री (डब्ल्यूएचओ द्वारा प्रदत्त) ही मिले।'[180] फ़ेसबुक दुनिया के तीन सबसे बड़े सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्मों (फ़ेसबुक, व्हाट्सएप और इंस्टाग्राम) का स्वामी है। इनमें से दो— फ़ेसबुक और व्हाट्सएप के सबसे ज़्यादा उपभोक्ता भारत में हैं। भारत में लगभग 28 करोड़ लोग फ़ेसबुक इस्तेमाल करते हैं और 40 करोड़ व्हाट्सएप। फ़ेसबुक ने अपने तीनों प्लेटफ़ॉर्मों से कोरोना वायरस के बारे में प्रसारित कथित ग़लत सूचनाओं की जाँच के लिए आर्टिफ़िशियल इंटेलीजेंस और अल्गोरिद्म के अतिरिक्त भी सैकड़ों लोगों की व्यवस्था की तथा उन पोस्टों को हटाने व उन एकाउंटों को स्थायी रूप से मिटा देने का फ़ैसला किया जो इस महामारी की भयावहता पर सवाल उठा रहे थे और जो इस बात पर ज़ोर दे रहे थे कि इसे हर साल करोड़ों लोगों की जान लेने वाली अन्य संक्रामक और ग़ैर-संक्रामक बीमारियों के सापेक्ष रख कर देखा जाना चाहिए।[181, 182] इनमें उन लोगों के एकाउंट शामिल थे, जो या तो वायरस को कम ख़तरनाक मानते थे, इसके टेस्ट के लिए बनाए गये किट को अवैज्ञानिक

---

[177] https://fee.org/articles/youtube-to-ban-content-that-contradicts-who-on-covid-19-despite-the-un-agency-s-catastrophic-track-record-of-misinformation/

[178] https://www.foxnews.com/media/youtube-will-remove-content-goes-against-world-health-organization-recommendations-ceo-says

[179] https://www.news18.com/news/india/misinformation-on-coronavirus-spread-twitter-deletes-rajinikanths-post-in-support-of-pm-modis-appeal-2545965.html

[180] https://blog.twitter.com/en_us/topics/company/2020/covid-19.html

[181] https://about.fb.com/news/2020/04/covid-19-misinfo-update/

[182] https://www.facebook.com/help/1952307158131536?helpref=related

मानते थे या इस महामारी से निपटने के लिए अलग तरीक़ों के पक्षधर थे। इनमें अनेक ऐसे भी थे जो कोरोना वायरस के अस्तित्व पर ही सवाल उठा रहे थे, तथा इसे गेट्स फ़ाउंडेशन और *बिग फ़ार्मा* के वैक्सीन–व्यापार से जोड़कर देख रहे थे।[183] इन पोस्टों के कारण कुछ जगहों पर तोड़फोड़ और कुछ जगहों पर लोगों की मौत की भी ख़बरें आयी थीं।[184] हालाँकि इस दौरान उन्होंने नस्ली भेदभाव वाली कुछ टिप्पणियाँ भी हटाईं, लेकिन आर्टिफ़िशियल इंटेलीजेंस के लिए पोस्टों में व्यक्त नस्ली नफ़रत के भाव को पकड़ना सम्भव नहीं है, इसलिए अधिक ज़ोर विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा व्यक्त तथ्यों के विरोध में जाने वाली पोस्टों, ट्वीट और वीडियो को चिह्नित करने पर रहा। इस क्रम में लंदन के पत्रकार डेविड आइक, कैलीफ़ोर्निया के डॉ. राशिद ए. बट्टर, भारत में प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचारक डॉ. विश्वरूप चौधरी, अमेरिका में रह रहे भारतीय मूल के दलित डॉक्टर शिवा समेत हज़ारों लोगों के पोस्ट और वीडियो फ़ेसबुक व अन्य प्लेटफ़ॉर्मों से डिलीट हो गये। इनमें अनेक कोरोना सेंटरों के डॉक्टर, चिकित्सा विशेषज्ञ और प्रतिष्ठित सामाजिक कार्यकर्ता शामिल थे। उन्हें कांस्पिरेसी थियरिस्ट कहकर लांछित किया गया। फ़ेसबुक की मुख्य कार्यकारी अधिकारी, अमेरिकी अरबपति शेरिल सैंडबर्ग ने तो यहाँ तक कहा कि अगर ज़रूरत पड़ी तो राजनेताओं और सेलेब्रेटीज़ की पोस्टों और यहाँ तक कि प्राइवेट ग्रुप में भेजी गयी पोस्टों को भी डिलीट किया जाएगा और यह किया भी गया। ये वही शेरिल हैं, जिनका नाम केम्ब्रिज एनालिटिका डेटा स्कैंडल में सामने आया था। उन पर फ़ेसबुक की ताक़त का अनैतिक इस्तेमाल करके अमेरिकी चुनावों को प्रभावित करने के आरोप हैं।[185] फ़ेसबुक, ट्विटर और गूगल ने इस दौरान कोरोना के भय को कम करके आँकने वाले ब्राजील के राष्ट्रपति जायर बोल्सनारो, अमेरिका के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प जैसे लोगों की बातों को भी भ्रामक कहकर डिलीट भी किया। यहाँ तक भी अगस्त के पहले सप्ताह में राष्ट्रपति के चुनाव अभियान वाले सोशल–मीडिया अकाउंटों को भी ट्विटर और फ़ेसबुक ने सस्पेंड कर दिया। ट्रम्प ने स्कूल खोलने की आवश्यकता बताते हुए कहा कि बच्चों में कोरोना वायरस के संक्रमण की कम आशंका है। प्रौद्योगिकी के बड़े खिलाड़ियों ने इसे अपनी कोविड–19 संबंधी नीतियों का खुला उल्लंघन माना। इससे पहले फ़ेसबुक, ट्विटर व अन्य प्लेटफ़ॉर्मों की नीति प्रमुख राजनेताओं के वक्तव्यों को सेंसर न करने की रही थी। बोल्सनारो ने अपने एक भाषण में कहा था कि मलेरिया निरोधी दवा हाइड्रॉक्सीक्लोरिन कोविड–19 का एक प्रभावी उपचार है, जिसे उनके सोशल मीडिया अकाउंटों पर भी डाला गया था।[186] पिछले दिनों अमेरिका ने भी भारत से इस दवा की माँग की थी। दरअसल हाइड्रॉक्सीक्लोरोकिन ही नहीं, ऐसी कोई भी बात जो लॉकडाउन और वैक्सीन की आवश्यकता को कम करके बताए, वह या तो सोशल मीडिया से ग़ायब हो गयी, या फिर उसकी पहुँच ख़त्म कर दी गयी। इन प्लेटफ़ॉर्मों ने मशीन लर्निंग तकनीक के माध्यम से कोरोना वायरस, लॉकडाउन, विश्व–स्वास्थ्य संगठन, देशी सरकारों द्वारा जारी गाइड–लाइन पर सवाल उठाने वाली पोस्टों को देखने वाले लोगों को चेतावनी भी दिखानी शुरू की।[187] स्वयं फ़ेसबुक द्वारा जारी आँकड़ों के अनुसार इस चेतावनी को देखने के बाद 95 प्रतिशत लोग उन पोस्टों को पढ़ने से परहेज़ करने लगे।[188]

---

[183] https://www.nbcnews.com/tech/tech-news/youtube-facebook-split-removal-doctors-viral-coronavirus-videos-n1195276

[184] https://abcnews.go.com/International/27-killed-alcohol-poisoning-iran-protect-coronavirus/story?id=69481841

[185] https://www.businessinsider.in/careers/mark-zuckerberg-reportedly-blamed-sheryl-sandberg-for-the-cambridge-analytica-fallout-making-her-worry-for-her-job/articleshow/66687423.cms

[186] https://www.bloomberg.com/news/articles/2020-03-31/facebook-twitter-pull-misleading-posts-from-brazil-s-bolsonaro

[187] https://www.politico.com/news/2020/04/16/facebook-fake-news-coronavirus-190054

[188] https://abcnews.go.com/Health/wireStory/facebook-warn-users-coronavirus-hoaxes-70181543

मई के पहले सप्ताह में फ़ेसबुक ने एक वैश्विक निगरानी समिति गठित की है। फ़ेसबुक के पैसे से चलने वाला यह बोर्ड कथित तौर पर फ़ेसबुक के सभी प्रकार के व्यावसायिक हितों से स्वतंत्र है।[189] फ़ेसबुक और इंस्टाग्राम से कंटेंट हटाए जाने पर अब लोग फ़ेसबुक के इस अपने 'सुप्रीम कोर्ट' में अपील कर सकेंगे। उसके इस 'कोर्ट' का फ़ैसला अंतिम होता है। वास्तव में कोविड-19 को वैश्विक महामारी घोषित करने से लगभग एक महीना पहले ही 15 फ़रवरी को म्युनिख सिक्युरिटी कॉन्फ्रेंस में डॉ. टेड्रोस द्वारा दिये गये भाषण में इसके संकेत मिल गये थे कि डब्ल्यूएचओ कोविड-19 को वैश्विक महामारी घोषित करने की मंशा रखता है और इसके लिए बिग टेक के साथ मिल कर काम किया जा रहा है। इस कांफ्रेंस में डॉ. टेड्रोस ने कहा था कि 'हम सिर्फ़ एक महामारी से ही नहीं लड़ रहे हैं, बल्कि एक इंफ़ोडेमिक (ग़लत सूचनाओं की अधिकता) से भी लड़ रहे हैं। (नॉवेल कोरोना) वायरस के तुलना में फ़ेक न्यूज़ अधिक आसानी से और तेज़ी से फैलती है, और यह भी उतना ही ख़तरनाक है। इसलिए हम अनुसंधान और मीडिया-कम्पनियों, जैसे फ़ेसबुक, गूगल, पिंटरेस्ट, टेनसेंट, ट्विटर, टिक-टॉक, यूट्यूब आदि के साथ काम कर रहे हैं, ताकि अफ़वाहों और ग़लत सूचनाओं का मुक़ाबला किया जा सके। हम सभी सरकारों, कम्पनियों और समाचार संगठनों से आह्वान करते हैं कि वे किसी प्रकार के सूचना-उन्माद का शिकार होने के बजाय बिना हमारे साथ उचित आवाज़ में अलार्म बजाएँ।'[190] हालाँकि यह सब सिर्फ़ एक महीने में ही नहीं हुआ। सच यह है कि इस प्रकार के परिवर्तनों की शुरुआत कुछ वर्ष पहले हो चुकी थी। कोविड-19 के दौरान इसका अधिक सघन प्रयोग हुआ।

लगभग एक साल पहले 7 मार्च, 2019 को फ़ेसबुक ने घोषणा की थी कि वह अपनी न्यूज फ़ीड और सर्च में उन समूहों और पृष्ठों की रैंकिंग कम कर देगा, जिन पर कथित तौर वैक्सीन के बारे में ग़लत जानकारी दी गयी हो। जब हम कुछ फ़ेसबुक अथवा इस प्रकार के किसी भी प्लेटफ़ॉर्म पर कुछ सर्च करते हैं तो उसका आर्टिफ़िशियल इंटलीजेंस हमारी ज़रूरतों का पूर्वानुमान करते हुए कुछ ख़ास सामग्री की अनुशंसा करता है। फ़ेसबुक ने व्यवस्था की कि इन पृष्ठों को किसी भी प्रकार के पूर्वानुमान के तौर पर नहीं दिखाया जाएगा तथा ऐसे एकाउंटों को बंद भी किया जा सकेगा। साथ ही फ़ेसबुक ने यह भी सुनिश्चित किया कि अगर कोई वैक्सीन से संबंधित विवाद के बारे में सर्च करना चाहे तो वह ऐसे ग्रुप या पेज पर न पहुँचे, जो इसके बारे में जानकारी देता हो। इसकी जगह वह इससे संबंधित सभी सर्च टर्म को डब्ल्यूएचओ और सीडीसी की वेबसाइट पर भेजने लगा।[191] डब्ल्यूएचओ ने इस मुद्दे पर फ़ेसबुक की प्रतिबद्धता की भूरि-भूरि प्रशंसा की।[192] उनके इस गठबंधन ने स्वास्थ्य संबंधी नीतियों के मामले में मतभिन्नता की आज़ादी, जिसे हम आज सामान्य तौर पर अभिव्यक्ति की आज़ादी कहते हैं, को इंटरनेट की दुनिया में लगभग ख़त्म कर दिया है। व्यक्ति की आवश्यकता के अनुसार परिणाम दिखाने देने वाली बिग टेक की कथित 'वैज्ञानिक' प्रणाली ने हम शोधार्थियों और पत्रकारों के साथ भी चुपके से ऐसा फ़रेब किया, जिससे पार पाना कुछ मामलों में बहुत श्रमसाध्य तो कई मामलों में असम्भव हो गया।[193] इस क़वायद को सार्वजनिक रूप से उपलब्ध उन तथ्यों के आलोक में भी देखे जाने की ज़रूरत है, जो प्रौद्योगिकी के इन दैत्यों की दवा और वैक्सीन व्यापार से जुड़ी कम्पनियों से अवैध गठबंधन की ओर इशारा करते हैं।[194]

---

[189] https://www.facebook.com/zuck/posts/10111886600788531

[190] https://www.who.int/dg/speeches/detail/munich-security-conference

[191] https://about.fb.com/news/2019/03/combatting-vaccine-misinformation/

[192] https://www.who.int/news-room/detail/04-09-2019-vaccine-misinformation-statement-by-who-director-general-on-facebook-and-instagram

[193] प्रमोद रंजन (2020), 'कोरोना काल में अभिव्यक्ति पर प्रौद्योगिकी का शिकंजा', *जनमीडिया,* वर्ष 09, अंक 99 (जून) : 15.

[194] https://www.thepharmaletter.com/article/are-big-pharma-and-big-tech-on-a-collision-course

रपटें बताती हैं कि वैश्विक लॉकडाउन से इन प्रौद्योगिकी–दैत्यों को सबसे अधिक आर्थिक लाभ हुआ है। अर्थव्यवस्था गोते लगा रही है, लेकिन इन कम्पनियों के शेयर नित नयी ऊँचाइयों को छू रहे हैं। इस महामारी के दौरान उनकी कुल सम्पत्ति में भी बेतहाशा इज़ाफ़ा हो रहा है।[195] चूँकि नयी स्थितियों में कामकाज के लिए इन प्लेटफ़ॉर्मों की ज़रूरत तेज़ी से बढ़ेगी, इसलिए आने वाले समय में ये दुनिया की अर्थव्यवस्था और राजनीति पर शिकंजा कड़ा करने की स्थिति में होंगे। यही कारण है कि अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति बराक ओबामा के आर्थिक सलाहकार, प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जेसन फ़ुरमान ने भी इन कम्पनियों पर तत्काल लगाम कसने की ज़रूरत बताई है। उनका मानना है कि कोरोना वायरस इन कम्पनियों पर दबाव को और कम कर देगा और ये अर्थव्यवस्था पर हावी हो जाएँगी।[196]

बहरहाल, टेक कम्पनियों की इस मुहिम के कारण न केवल उनके प्लेटफ़ॉर्मों से न विश्व स्वास्थ्य संगठन की अवैज्ञानिक नीतियों की आलोचना बंद हो गयी, बल्कि दुनिया के साढ़े सात अरब लोगों के पास उपलब्ध परम्परागत सूझ–बूझ और संकट से निकलने की सहज रचनात्मकता भी कथित विशेषज्ञता के नाम पर कुर्बान कर दी गयी। इसका असर प्रकारांतर से परम्परागत समाचार माध्यमों व हमारे पारम्परिक दायरों (चौक–चौराहों) पर भी पड़ा और हर जगह निराधार भय और अफ़वाहों का बोलबाला हो गया।

परम्परागत समाचार-माध्यमों पर पहरा और क़ानून के ज़रिये उत्पीड़न

भारत प्रेस की आज़ादी के सूचकांक पर बहुत नीचे रहा है। दुनिया के कुल 180 देशों में इसका स्थान 142 वाँ है। कोविड–19 के दौरान यहाँ पत्रकारों को सरकारी अमले की नीतियों पर सवाल उठाने तथा कथित तौर पर 'फ़ाल्स न्यूज़' फैलाने के आरोप में प्रताड़ित किया जा रहा है।[197,198] भारत में कई राज्यों की पुलिस ने कहा है कि 'ऐसा कोई भी व्यक्ति जो कोविड–19 वायरस को फैलने से रोकने के लिए सरकारी मशीनरी द्वारा किये जा रहे काम करने के तरीक़ों पर संदेह प्रकट करेगा, उस पर कार्रवाई की जाएगी।'[199] केवल भारत में ही नहीं, बल्कि दुनिया के अधिकांश समाचार–माध्यम, जिनमें प्रमुख अख़बार, टीवी चैनल, वेबसाइटें शामिल हैं; जनता के सवालों के उत्तर के लिए कथित विशेषज्ञ संस्था विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) और अमेरिका की 'सेंटर फ़ॉर डिज़ीज़ कंट्रोल ऐंड प्रिवेंशन' (सीडीसी) जैसी संस्थाओं की ओर भेज रही हैं। इन संस्थाओं के निर्देशों की आड़ में दुनिया के अनेक विकासशील और ग़रीब देशों ने अपने देश में कार्यरत मीडिया संस्थानों के लिए ऐसे नियम बनाए हैं, जिसके तहत कोविड–19 के संबंध में सिर्फ़ उन्हीं तथ्यों और रणनीतियों को जनता के सामने रखने की छूट है, जिन्हें इन संस्थाओं की मान्यता प्राप्त हो। इंटरनैशनल प्रेस इंस्टीट्यूट की ताज़ा रिपोर्ट बताती है कि इस बीच इन संस्थाओं से भिन्न मत रखने के कारण सैंकड़ों पत्रकारों और समाचार–माध्यमों को प्रताड़ित किया गया है। इनमें आपराधिक मुक़दमा, जनता और पुलिस द्वारा पिटाई, आधिकारिक प्रेस कांफ्रेंसों में भाग लेने पर प्रतिबंध, यात्राओं पर प्रतिबंध, प्रेस पास व मान्यता का रद्द किया जाना आदि शामिल है। इस बीच, इन देशों की सरकारों ने कोविड–19 से संबंधित सवाल उठाने पर सैंकड़ों पत्र–पत्रिकाओं को बंद और वेबसाइटों को अवरुद्ध कर दिया है और उन्हें प्रकाशित

---

[195] https://www.inventiva.co.in/stories/oorja/corona-crisis-google-facebook-apple-amazon-how-are-these-companies-brightening-their-businesses/

[196] https://www.businessinsider.in/tech/obamas-former-adviser-says-silicon-valley-giants-must-release-their-iron-grip-on-everyones-data/articleshow/68392373.cms

[197] https://theprint.in/india/govt-preventing-indian-media-from-criticising-it-reporting-on-pandemic-ipi/423095/

[198] https://thewire.in/media/himachal-pradesh-firs-journalists

[199] https://mumbaipolice.gov.in/files/Headline/25.pdf

सामग्री को हटाने के लिए मजबूर किया है। इन प्रताड़नाओं से भी अधिक चिंताजनक बात यह है कि एशिया, लातीनी अमेरिका और अफ्रीका के कई देशों में कोरोना वायरस के बहाने सवालों पर अंकुश लगाने वाले क़ानून पारित कर दिये गये हैं। इस मामले में सबसे बुरी हालत एशियाई देशों में है।[200]

रूसी संसद ने कोविड-19 से संबंधित सवालों पर प्रतिबंध लगाने के लिए गत 31 मार्च को अपराध-संहिता में परिवर्तन किया। रूस में अगर कोई व्यक्ति कोविड-19 के बारे में कथित तौर पर ग़लत जानकारी देता है तो उस पर 23,000 यूरो (लगभग 19.5 लाख रुपये) तक का जुर्माना और पाँच साल का कारावास थोपा जा सकता है। अगर कोई मीडिया संस्थान ऐसा करता है तो उस पर 1,17,000 यूरो (लगभग 90 लाख रुपये) तक का जुर्माना लगाया जा सकता है।[201] उज़्बेकिस्तान में अप्रैल के पहले सप्ताह में इसके लिए क़ानून में बदलाव किया गया है। नये क़ानून में आपत्तिजनक सामग्री का भण्डारण या प्रबंधन करने पर 8.2 करोड़ उज़्बेकिस्तानी सोम (लगभग 7 लाख रुपये) का दण्ड या तीन साल के कारावास का प्रावधान किया गया है। अगर कोई व्यक्ति उसे 'शेयर' करता है तो उसे पाँच साल की सज़ा होगी।[202] दक्षिण-पूर्व एशियाई देश वियतनाम में फ़रवरी में बने नये क़ानून के अनुसार अब वहाँ सोशल मीडिया पर कथित भ्रामक जानकारी देने, शेयर करने पर 10 से 20 लाख डोंन (32 से 64 हज़ार रुपये) के जुर्माने का प्रावधान किया गया है।[203] यह रक़म कितनी ज़्यादा है इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि यह रक़म वियतनाम के अधिकांश नागरिकों के तीन से छह महीने के मूल वेतन के बराबर बैठती है।[204]

फ़िलीपींस की कांग्रेस ने 24 मार्च को एक विशेष सत्र आयोजित कर एक क़ानून पारित किया, जिसमें राष्ट्रपति रोड्रिगो दुतेर्ते को कोविड-19 से लड़ने के लिए आपातकालीन शक्तियाँ प्रदान की गयीं। नये क़ानून में सोशल मीडिया व अन्य प्लेटफ़ॉर्मों पर 'कोविड-19 संकट के बारे में झूठी जानकारी फैलाने पर दो महीने की जेल और 19,500 डॉलर (लगभग 14.5 लाख रुपये) जुर्माने का प्रावधान किया गया है। इस अधिकार के बाद अप्रैल के पहले सप्ताह में दुतेर्ते ने पुलिस और सेना को लॉकडाउन का उल्लंघन करने वालों को देखते ही गोली मारने का आदेश भी दे दिया।[205] अज़रबैजान, बोस्निया, कम्बोडिया, जॉर्डन, रोमानिया, थाईलैंड, संयुक्त अरब, ब्राज़ील, अल्जीरिया, बोलीविया, हंगरी आदि देशों में भी इसी प्रकार के नये क़ानून बनाए गये हैं। भारत में अभी तक इस प्रकार का कोई क़ानून नहीं बनाया गया है, लेकिन सरकार, न्यायपालिका और मीडिया हाउसों के मालिक सवालों को दबाने के लिए यहाँ भी एकजुट हो गये हैं।

भारत में मीडिया-मालिकों के हित कई अन्य देशों की अपेक्षा सरकारी खज़ाने से अधिक नाभिनालबद्ध हैं। यह निर्भरता विज्ञापन के लिए भी है, और मीडिया मालिकों के अन्य व्यवसायों के लिए पर्दे के पीछे से ली जाने वाली अन्य वैध-अवैध रियायतों के लिए भी। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने देश में 21 दिनों के प्रथम लॉकडाउन की घोषणा 24 मार्च की शाम को की थी। लेकिन इस घोषणा से कुछ घंटे पहले उन्होंने देश के सभी प्रमुख समाचारपत्रों के मालिकों और सम्पादकों से वीडियो

---

[200] https://www.economist.com/asia/2020/06/13/governments-all-over-asia-are-silencing-critical-journalists

[201] https://ipi.media/new-fake-news-law-stifles-independent-reporting-in-russia-on-covid-19/

[202] https://www.aljazeera.com/news/2020/04/uzbekistan-coronavirus-curtail-civil-liberties-200403074921162.html

[203] https://www.reuters.com/article/us-health-coronavirus-vietnam-security/vietnam-introduces-fake-news-fines-for-coronavirus-misinformation-idUSKCN21X0EB

[204] https://www.reuters.com/article/us-health-coronavirus-vietnam-security/vietnam-introduces-fake-news-fines-for-coronavirus-misinformation-idUSKCN21X0EB

[205] https://in.reuters.com/article/health-coronavirus-philippines-duterte/shoot-them-dead-philippine-leader-says-wont-tolerate-lockdown-violators-idINKBN21K0AQ

कॉन्फ्रेंस के ज़रिये व्यक्तिगत तौर पर बातचीत की। इस बातचीत में *इंडियन एक्सप्रेस* समूह, *द हिंदू* समूह, *पंजाब केसरी* समूह समेत 11 अख़बारों के 20 प्रतिनिधि शामिल थे। इस बातचीत की रिकॉर्डिंग सार्वजनिक नहीं की गयी, न ही इसमें शामिल हुए अख़बारों ने इस विषय में अपने पाठकों को कोई जानकारी दी। इस बातचीत के बारे में प्रधानमंत्री की आधिकारिक वेबसाइट पर एक संक्षिप्त सूचना दी गयी है। उसके अनुसार, इस बातचीत के दौरान प्रधानमंत्री ने कहा कि कोविड–19 संकट के दौरान 'मीडिया, सरकार और जनता के बीच, राष्ट्रीय व क्षेत्रीय स्तर पर एक कड़ी की भूमिका निभाए तथा निरंतर अपना फ़ीडबैक दे।' प्रधानमंत्री ने 'ज़ोर दिया कि' इस दौरान 'निराशावाद, नकारात्मकता और अफ़वाह फैलाने वालों से निपटना सबसे ज़्यादा ज़रूरी है।' उन्होंने अख़बारों के मालिकों और सम्पादकों को कहा कि वे 'नागरिकों को आश्वस्त करें' कि 'सरकार कोविड–19 के प्रभाव का मुक़ाबला करने के लिए प्रतिबद्ध है।'[206] आश्चर्यजनक यह था कि उन्होंने समाचार–पत्रों के मालिकों को कोविड–19 से संबंधित लेखों और शोध–सामग्री के प्रकाशन के संबंध में भी निर्देश दिये। सामान्य तौर पर सरकारें 'ख़बरों' को ही मन–मुताबिक़ ढालने तक सीमित रहती हैं। इस कारण लम्बे लेखों, पुस्तकों में आने वाला 'विचार' पक्ष सेंसरशिप से अपेक्षाकृत बचा रहता है। लेकिन अचानक बुलाई गयी इस व्यक्तिगत बातचीत की बैठक में नरेंद्र मोदी ने कहा कि समाचार–पत्र 'अपने पृष्ठों पर प्रकाशित लेखों के माध्यम से कोरोना वायरस के बारे में जागरूकता फैलाएँ' तथा 'अन्य देशों के शोधपत्र व अंतर्राष्ट्रीय आँकड़ों को शामिल करते हुए वायरस के फैलाव के प्रभावों को उजागर करें।'[207] क्या उनका संकेत डब्ल्यूएचओ, सीडीसी आदि द्वारा वायरस के प्रसार के बारे में प्रसारित किये जा रहे अतिशयोक्तिपूर्ण आँकड़ों और महामारी से निपटने के लिए सुझाई जा रही निरंकुश नीतियों को वैधता प्रदान करने की ओर नहीं था?

प्रधानमंत्री ने इस संबंध में टीवी चैनलों के मालिकों के साथ भी अलग से ऐसी कोई बैठक की या नहीं, इस संबंध में जानकारी उपलब्ध नहीं है। लेकिन हमने देखा कि भारत में सम्पूर्ण मीडिया सरकार की कोविड–19 संबंधी नीतियों के आगे नतमस्तक रहा। मीडिया के अधिकांश हिस्से ने यहाँ दुनिया के सबसे सख़्त और अमानवीय लॉकडाउन पर कोई आपत्ति नहीं की, बल्कि लॉकडाउन को कथित तौर पर तोड़ने वाले भूख और बदहाली से बिलबिलाते कमज़ोर तबक़ों को समाज और देश के अपराधी के रूप में पेश किया। इस बीच मीडिया का सबसे प्रिय पद 'लॉकडाउन/सोशल डिस्टेंसिंग की उड़ी धज्जियाँ' था। भारतीय मीडिया के एक बहुत छोटे–से हिस्से ने ही कमज़ोर तबक़ों के प्रति करुणा दिखाई तथा एक छोटे–से ही हिस्से ने सरकारी कामकाज में अराजकता और भ्रष्टाचार के सवालों को उठाया। लेकिन इस हिस्से ने भी कोविड–19 की गम्भीरता के अतिशयोक्तिपूर्ण प्रचार और इससे निपटने के अमानवीय और बर्बर तरीक़ों पर कोई सवाल नहीं उठाया। वे कथित विशेषज्ञता और कथित विज्ञान के पक्ष में पूरी ताक़त के साथ खड़े रहे। मीडिया पर नियंत्रण करने की कोशिशों का आलम यह था कि भारत सरकार ने सुप्रीम कोर्ट से गुहार लगाई कि वह 'न्याय के बड़े हित' को देखते हुए मीडिया संस्थानों, विशेष कर वेब–पोर्टलों को निर्देश दे कि वे कोविड–19 के संबंध में सिर्फ़ सरकार द्वारा निर्देशित आधिकारिक स्रोतों से ली गयी सूचनाएँ ही प्रसारित करें।[208] 31 मार्च को इस आवेदन पर सुनवाई करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने डब्ल्यूएचओ के महानिदेशक डॉ. ट्रेडॉस को उद्धृत करते हुए कहा कि 'हम सिर्फ़ महामारी से नहीं लड़ रहे, हम इंफ़ोडेमिक (कथित ग़लत सूचनाओं के प्रसार) से भी लड़ रहे हैं। फ़ेक न्यूज इस वायरस की तुलना में अधिक तेज़ी और अधिक आसानी से फैलती है और

---

[206] https://www.narendramodi.in/prime-minister-narendra-modi-interacts-with-print-media-journalists-and-stakeholders-548937

[207] वही.

[208] https://www.thehindu.com/news/national/coronavirus-supreme-court-upholds-right-to-discuss-covid-19/article31218565.ece

यह वायरस के जितना ही ख़तरनाक है।' कोर्ट ने कहा कि 'हम महामारी के बारे में स्वतंत्र चर्चा में हस्तक्षेप करने का इरादा नहीं रखते हैं, लेकिन मीडिया को घटनाक्रम बारे में अधिकारिक बातों का ही संदर्भ देने और प्रकाशित करने का निर्देश देते हैं।'[209] इसके बाद सरकार के अलग-अलग प्राधिकारों द्वारा मीडिया को निर्देश जारी किया गया कि उन्हें किन-किन स्रोतों से समाचार संगृहीत करना है। इस प्रकार सुप्रीम कोर्ट ने पत्रकारिता को सरकार के निर्देशों पर चलने का आदेश दिया, लेकिन यह आश्चर्यजनक था कि भारतीय अख़बारों ने इसे अपनी 'जीत' मानते हुए ख़बरें प्रकाशित कीं कि कोर्ट ने सरकार के आग्रह को ख़ारिज कर दिया है और कहा कि वह मीडिया के मामले में हस्तक्षेप नहीं करेगी।[210] भारत में समाचार माध्यमों ने किस प्रकार लम्बे समय से चली आ रही सेंसरशिप के प्रति अनन्य स्वीकार-भाव विकसित कर लिया है, उसका यह एक रोचक उदाहरण है। कोर्ट के फ़ैसले को अपनी 'जीत' बता कर वे न सिर्फ़ सेंसरशिप का विरोध करने की ज़हमत उठाने से बच गये, बल्कि अपनी स्वतंत्रता और विश्वसनीयता का ढिंढोरा पीटकर ख़ुद ही अपनी पीठ थपथपा डाली।

यहाँ कहना मुश्किल है कि क्या कोविड-19 के विभिन्न पहलुओं पर मीडिया की चुप्पी का कारण सिर्फ़ प्रधानमंत्री का भय, अख़बार मालिकों के सरकार से जुड़े आर्थिक हित, या न्यायालय के निर्देश रहे हैं। इन चीज़ों ने निश्चय ही निर्णायक भूमिका निभाई; लेकिन यह भी सच है अधिकांश पत्रकार स्वयं भी कोविड-19 की वजह से होने वाली मौतों के पूर्वानुमान और इटली और अमेरिका से आयी मौतों की संख्या से आक्रांत हैं। उनमें से अधिकांश को आज भी यह जानकारी नहीं है कि वे पूर्वानुमान फ़र्ज़ी साबित हो चुके हैं तथा इम्पीरियल कॉलेज के नील फ़र्ग्युसन से ब्रिटेन के सांसद पूछताछ कर रहे हैं। इसी प्रकार उन्हें यह भी मालूम नहीं है कि मौतों के आँकड़ों के संकलन हेतु जो पद्धति अपनाई जा रही है, वह चिकित्सा विज्ञान के शोध के लिए भले ही उचित हो, लेकिन उससे पैदा होने वाले आँकड़े अतिशयोक्तिपूर्ण हैं। दरअसल, जैसा कि पहले कहा गया, बिग टेक की नीतियों का प्रभाव उनके अपने प्लेटफ़ॉर्मों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह पत्रकारों और लेखकों द्वारा इस्तेमाल की जा रही सूचनाओं के स्रोतों पर भी असर डाल रहा है। बिग टेक कथित 'फ़ैक्ट चेकिंग' संस्थाओं को धन मुहैया करवा कर विरोधी स्रोतों को अविश्वसनीय बनाने का अभियान चला रहा है। साथ ही, अनेक विशाल मीडिया घरानों के साथ-साथ छोटे ब्लॉगों, वेबसाइटों, वैकल्पिक और मुख्यधारा के अन्य समाचार-माध्यमों को धन उपलब्ध करवा कर फ़ैक्ट चेकिंग संस्थाओं में तब्दील कर रही हैं।[211] इन कार्यों के लिए पिछले कुछ वर्षों से सिर्फ़ टेक जायंट्स ही नहीं, बल्कि परोपकार-व्यवसायी व कई अन्य वैश्विक संस्थाएँ भी धन उपलब्ध करवा रही हैं। इनमें मुख्य है, गेट्स फ़ाउंडेशन।[212] कोविड-19 से कुछ समय पहले ही उन्होंने इस दिशा में थैलियाँ खोल दी थीं, कोविड-19 के बाद उन्होंने इसका मुँह और चौड़ा कर दिया है। ऐसी ही एक एक प्रसिद्ध संस्था है 'पॉलिटी फ़ैक्ट'। इस संस्था को पिछले वर्षों में फ़ेसबुक, गेट्स फ़ाउंडेशन व अन्य संस्थाओं से अनुदान राशि प्राप्त हुई है।[213] यह संस्था इंटरनेट पर आने वाली सामग्री के तथ्यों की जाँच करती है और उन पर फ़ाल्स (ग़लत), मोस्टली फ़ाल्स (अधिकांश झूठ), पैंट्स ऑन द फ़ायर (पूरी तरह झूठ), सच, अधिकांश सच आदि का लेबल लगाती है। बानगी के लिए इस संस्था द्वारा चुनी गयी, कुछ ख़बरों के लेबल तालिका-3 में देखें![214] इससे समझा जा सकता है कि किस प्रकार राजनीतिक मतों को भी सच और झूठ के तकनीकी खाँचों में बाँट कर प्रस्तुत किया जा रहा है।

---

[209] https://main.sci.gov.in/supremecourt/2020/10789/10789_2020_0_1_21581_Order_31-Mar-2020.pdf

[210] https://www.thehindu.com/news/national/coronavirus-supreme-court-upholds-right-to-discuss-covid-19/article31218565.ece

[211] https://www.poynter.org/fact-checking/2020/ifcn-and-facebook-distribute-another-300k-through-the-coronavirus-fact-checking-grants-and-will-support-8-projects/

[212] https://www.theguardian.com/info/2018/oct/02/philanthropic-partnerships-at-the-guardian

[213] https://www.politifact.com/who-pays-for-politifact/

[214] https://www.politifact.com/search/factcheck/?q=covid

बहरहाल, पत्रकारिता विधा की अपनी संरचनागत सीमाएँ हैं और इसमें कोई संदेह नहीं कि उन सीमाओं के भीतर रहकर निभाए जा सकने वाले कर्तव्यों को भी पूरा करने में पत्रकारिता विफल रही है। यहाँ उसके कारणों में जाने का अवकाश नहीं है। लेकिन, यहाँ इतना याद दिला देना पर्याप्त होगा कि अगर पत्रकारिता इस कथित महामारी के संदर्भ में सिर्फ़ एक तुलना भी प्रस्तुत कर पाती तो तस्वीर बिल्कुल साफ़ हो जाती। यह तुलना यूँ हो सकती थी कि आज दुनिया में अन्य संक्रामक और ग़ैर-संक्रामक बीमारियों से कितने लोग मरते हैं और लॉकडाउन की वजह से इसमें कितना इज़ाफ़ा होने की सम्भावना है। मीडिया के अतिरिक्त अन्य संस्थाओं पर भी भारत समेत, दुनिया के कई देशों में ऐसे प्रतिबंध लगे हुए हैं, जो आम लोगों के अनुभवजन्य ज्ञान और विवेक को ही नहीं, कथित विशेषज्ञों को भी सवाल उठाने से रोक रहे हैं। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, खड़गपुर ने अपने संकाय सदस्यों को कहा है कि ऐसे किसी विषय पर न लिखें, न बोलें, जिसमें सरकार की किसी भी मौजूदा नीति या कार्रवाई की प्रतिकूल आलोचना होती हो। संस्थान ने अपने अध्यापकों को यह छूट दी है कि वे 'विशुद्ध' वैज्ञानिक, साहित्यिक या कलापरक लेखन कर सकते हैं; लेकिन उन्हें इस प्रकार का लेखन करते हुए यह ध्यान रखना है कि उनका लेखन किसी भी प्रकार से 'प्रशासनिक मामलों को न छुए।'[215] भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दुनिया के उन प्रमुख संस्थानों में शुमार हैं, जिसके अध्यापकों को विज्ञान विषयक विशेषज्ञता के लिए जाना जाता है। ऐसे में यह देखना सबसे महत्त्वपूर्ण है कि किसके पक्ष के विज्ञान, किसके पक्ष की विशेषज्ञता और किसके पक्ष की पत्रकारिता को रोका जा रहा है और किसके पक्ष के विचारों को अभयारण्य प्रदान किया जा रहा है?

किताब पर भी प्रतिबंध

पत्रकारिता के साथ इस दौर में जो हुआ, उसे संक्षेप में देख लेने के बाद अब हम *न्युयॉर्क टाइम्स* में 'व्यापार संबंधी खोजी पत्रकार' के रूप में काम कर चुके एलेक्स बेरेनसन की किताब के प्रसंग को देखें, जो ज्ञान के निर्माण और संग्रहण के क्षेत्र में दूरगामी ख़तरे का संकेत हैं। पत्रकार, लेखक व शोधार्थी बेरेनसन ने अपनी किताब *कोविड-19 और लॉकडाउनों से संबंधित अनकही सच्चाइयाँ*, भाग-1 में विभिन्न सरकारों और स्वास्थ्य-संस्थाओं द्वारा जारी उन तथ्यों को रखा था, जिन्हें समाचार माध्यमों में जगह नहीं मिल रही है। उन तथ्यों से उजागर होता था कि कोविड-19 की भयावहता उसकी प्रसारित छवि से बहुत कम है।[216] अमेज़न ने इस किताब को अफ़वाह फैलाने के आरोप में प्रतिबंधित कर दिया। उल्लेखनीय है कि बेरेनसन ने *न्युयॉर्क टाइम्स* में इराक़ पर क़ब्ज़े के लिए हुए युद्ध और ख़तरनाक दवाओं से संबंधित उद्योगों को कवर किया था। 2010 में *न्युयॉर्क टाइम्स* को विदा कहने के बाद वे उपन्यास लेखन की ओर मुड़ गये। उनके उपन्यास आम पाठकों के बीच काफ़ी लोकप्रिय रहे हैं तथा 2007 में उनका एक उपन्यास *न्युयॉर्क टाइम्स* की बेस्ट सेलर लिस्ट में भी शामिल रहा था। उनकी 'जॉन वेल्स सीरीज़' के उपन्यासों की दुनिया भर में दस लाख से अधिक प्रतियाँ बिकीं। इनमें ज़्यादातर ई-बुक्स थीं। बेरेनसन ख़ुद को 'अमेज़न-राइटर' कहते हैं। उनकी किताबों की सबसे अधिक बिक्री अमेज़न के ई-बुक स्टोर किंडल से होती है।[217]

---

[215] https://www.hindustantimes.com/education/iit-kharagpur-asks-faculty-not-to-write-on-topics-critical-of-government/story-G9CxcmHSLSyhr31BSlly6J.html#:~:text=The%20IIT%20Kharagpur%20notification%2C%20signed,in%20the%20print%2Fsocial%20media.&text=However%2C%20they%20can%20write%20on,said%20in%20a%20recent%20circular.

[216] http://www.alexberenson.com/the-first-1000-words-of-chapter-1-of-unreported-truths-about-covid-19-and-lockdowns-the-boolet-amazon-has-censored/

[217] https://www.youtube.com/watch?v=v8GssYDROeQ

तालिका-3

फ़ैक्ट चेकिंग संस्थाओं द्वारा किये जा रहे कामों की बानगी

प्लेटफ़ॉर्म	मत / विचार	पॉलिटी फ़ैक्ट का लेबल
जेफ़ शिल्पी, जनप्रतिनिधि. 28 अप्रैल, 2020	'कोविड-19 से युवाओं को ज़्यादा ख़तरा नहीं है। उन्हें इसकी तुलना में एचपीवी वैक्सीन से अधिक ख़तरा है।'	'लायर, लायर, पैंट्स ऑन फ़ायर!' (पूरी तरह झूठ)
डोनाल्ड ट्रम्प, अमेरिका के राष्ट्रपति 5 मई, 2020	'मॉडलिंग के आधार पर कोविड-19 से होने वाली मौतों का अनुमान लगाने वालों ने इस पर ध्यान नहीं दिया कि लोगों द्वारा स्वयं सतर्कता बरतने पर मौतों की संख्या कम रहेगी।'	फ़ाल्स (झूठ)
सिंडी ओ'लॉफलिन, मिसौरी राज्य सीनेट की सदस्य 22 मार्च, 2020	'मुझे इस देश के इतिहास में ऐसा कोई समय नहीं दिखता है, जब पूरी तरह से स्वस्थ लोगों अपने घरों तक सीमित हो गये हों, या सिर्फ़ बहुत ज़रूरी कामों से बाहर निकल रहे हों'	फ़ाल्स (झूठ)
एक फ़ेसबुक पोस्ट, 26 अप्रैल, 2020	'कोविड-19 अब हमारी दुनिया में हमेशा रहने वाला है। हमें इस दीर्घकालिक संबंध से निपटने के लिए तैयार रहने की आवश्यकता है।'	मोस्टली ट्रू (अधिकांशत: सच)
एक फ़ेसबुक पोस्ट	'सीडीसी ने ईमेल के ज़रिये वोटिंग करवाने की सिफ़ारिश की है। इस प्रकार चुनावों के लिए महामारी का यह आख्यान रचा गया है।'	मोस्टली फ़ाल्स (अधिकांशत: झूठ)
दलॉगर और टिकटॉक	'कोरोना वायरस से अधिक लोग, इसके कारण पैदा हुई बेरोज़गारी से मर रहे हैं।'	फ़ाल्स (झूठ)
एक फ़ेसबुक पोस्ट 19 अप्रैल, 2020	'स्वीडन में लॉकडाउन नहीं है, लेकिन उसकी स्थिति लॉकडाउन लगाने वाले उसके पड़ोसी डेनमार्क और नॉर्वे से बेहतर है।'	मोस्टली फ़ाल्स (अधिकांशत: झूठ)
फ़ेसबुक पोस्ट	'गेट्स फाउंडेशन, यू.के वैक्सीन निर्माण से 31.5 अरब डॉलर कमाने के चक्कर में है।'	फ़ाल्स (झूठ)
माइक तुरजई, पेंसिल्वेनिया हाउस ऑफ़ रिप्रेजेंटेटिव के स्पीकर। एक वीडियो में, 9 मई, 2020	'ऐसा लगता है कि इस बीमारी से बच्चों को ख़तरा नहीं है, जब तक कि वे पहले से किसी अन्य ख़तरनाक बीमारी से ग्रसित नहीं हो।'	फ़ाल्स (झूठ)
टकर कार्लसन डेली कॉलर डॉट कॉम के सम्पादक और विश्लेषक, 27 अप्रैल, 2020	'(कोरोना) वायरस उतना घातक नहीं है जितना हमने सोचा था।'	फ़ाल्स (झूठ)
रिपब्लिकन पार्टी से जुड़े लिंक प्रोजेक्ट का पोस्ट 5 मई, 2020	'डॉनाल्ड ट्रम्प ने वॉल स्ट्रीट के लिए वेल आउट किया, न कि मेन स्ट्रीट (रेहड़ी-पटरी वालों के लिए)।'	फ़ाल्स (झूठ)
एक फ़ेसबुक पोस्ट, 22 अप्रैल, 2020	'1918 की फ़्लू महामारी के दौरान, सैन फ्रांसिस्को निवासियों ने 'एंटी-मास्क लीग' का गठन किया। इसके कारण अंतत: सैन फ्रांसिस्को उन शहरों में से एक रहा, जहाँ सबसे अधिक मौतें हुईं।'	मोस्टली ट्रू (अधिकांशत: सच)

किताबों के प्रकाशन की इस नयी और बेहद सस्ती तकनीक ने उनके जैसे साहित्यिक दुनिया में लम्बे समय तक दख़ल न रखने वाले अनेक लेखकों को उड़ान के लिए नया आसमान दिया है। बेरेनसन ने अपनी किताब चार जून, 2020 को ई-बुक के रूप में अमेज़न पर प्रकाशित की थी। जारी होते ही बड़ी संख्या में लोगों ने इसे ख़रीदा, लेकिन जल्दी ही अमेज़न ने इसे प्रतिबंधित कर दिया। बेरेनसन को भेजे गये एक ईमेल

में अमेज़न ने बताया कि उनकी किताब कंटेंट संबंधी नियमों का उल्लंघन करती है, इसलिए उसे हटा दिया गया है। बेरेनसन ने मेल का उत्तर दिया, लेकिन जैसा कि अमेज़न ऐसे मामलों में करता है, उन्हें जवाब में कोई जवाब नहीं मिला। हताश बेरेनसन ने इस बारे में ट्वीट किया जिस पर एलन मस्क की नज़र पड़ी। मस्क दुनिया की दो प्रभावशाली कम्पनियों— स्पेसएक्स (अंतरिक्ष परिवहन से संबंधित) और टेस्ला (इलेक्ट्रिक कार और सौर उर्जा से संबंधित) के संस्थापक और सीईओ हैं। उनकी कम्पनियों के लक्ष्यों में टिकाऊ ऊर्जा उत्पादन द्वारा ग्लोबल वार्मिंग को कम करना और मंगल ग्रह पर मानव कॉलोनी की स्थापना करना शामिल है। टेस्ला या स्पेसएक्स की अमेज़न के साथ सीधी व्यापारिक प्रतिस्पर्धा नहीं रही है, लेकिन मस्क और बेजोस अंतरिक्ष उद्योग में लम्बे समय से प्रतिद्वंद्वी हैं। बेरेनसन ने यह किताब लिखते समय अपने अध्ययन का एक अंश ट्वीट किया था, जिसे एलन मस्क द्वारा अपने एकाउंट पर री-ट्वीट किया गया था। मस्क आरम्भ से ही लॉकडाउन के विरोधी रहे हैं। कुछ मीडिया-रिपोर्टों के अनुसार उन्होंने अपनी फ़ैक्ट्रियों को खुला रखने पर बल देते हुए कर्मचारियों से कहा था कि 'कोविड-19 से मौत का उतना ही ख़तरा है, जितना की किसी बदक़िस्मत कार-दुर्घटना से मरने का।' साथ ही, उन्होंने कैलिफ़ोर्निया में लगे लॉकडाउन का विरोध करते हुए कहा था कि अगर ये प्रतिबंध जारी रहे, तो वे अपनी कम्पनी का मुख्यालय वहाँ से हटा लेंगे।[218] अमेज़न द्वारा बेरेनसन की इस किताब को बैन करने की सूचना से तिलमिलाए मस्क ने अमेज़न के संस्थापक और सीईओ जेफ़ बेजोस को टैग करते हुए अपने ट्वीट में लिखा 'अमेज़न को भंग कर देने का समय आ गया है, इज़ारेदारी ग़लत है।' इसके बाद अमेज़न हरकत में आया और लेखक को मेल करके बताया कि उनकी किताब फिर से बिक्री के लिए उपलब्ध करवाई जा रही है। उसके बाद लगभग एक महीने तक यह किताब दुनिया के बड़े-बड़े लेखकों को पछाड़ते हुए पर बेस्ट सेलर बनी रही। इसकी लाखों प्रतियाँ बिक चुकी हैं। न सिर्फ़ बेस्ट सेलर बनी हुई है, बल्कि उनके द्वारा किताब में दिये गये तथ्यों का अभी तक किसी संस्था अथवा विशेषज्ञ ने खण्डन भी नहीं किया है। अगर दुनिया के एक अमीर ने दूसरे अमीर के समक्ष इस किताब को प्रतिबंधित करने का विरोध नहीं किया होता, तो क्या होता? तब हम शायद इस किताब के अस्तित्व से भी अपरिचित रह जाते!

इस प्रकरण की गम्भीरता को समझने के लिए हमें एक नज़र ई-बुक्स के बढ़ते व्यापार पर भी डाल लेनी चाहिए। 2019 में ई-बुक का वैश्विक मार्केट शेयर (बिक्री से होने वाली आय) कुल किताबों की बिक्री का 18 प्रतिशत था, जबकि संख्या के हिसाब से कुल बिकी किताबों में से 36 प्रतिशत ई-बुक्स थीं। आँकड़ों का विश्लेषण करने वाली अलग-अलग संस्थाओं के अनुसार ई-बुक्स में से 67 से 83 प्रतिशत का शेयर अकेले अमेज़न (किंडल) का था।[219] 2019 में ई-पुस्तकों का बाजार 18.13 अरब अमेरिकी डॉलर था, 2025 तक इसके 23.12 अरब अमेरिकी डॉलर तक पहुँच जाने की उम्मीद है।[220] वह भी तब जब दुनिया भर में ग़रीबी और भुखमरी के बढ़ने और मध्य वर्ग की क्रय-शक्ति में भारी कमी होने की आशंका है। ई-बुक्स के बाज़ार में तेज़ बढ़ोतरी का कारण इलेक्ट्रॉनिक किताबों को पढ़ाने वाले उपकरणों का उन्नत होते जाना और किताबों व अन्य दस्तावेज़ों के डिजिटलीकरण की प्रक्रिया का तेज़ होना है। लॉकडाउन के दौरान सिर्फ़ आम पाठक ही ई-बुक्स और ऑडियो-बुक्स की ओर नहीं आये, बल्कि विश्वविद्यालयों, स्कूल व अन्य संस्थाएँ भी अपने पुस्तकालयों में इन्हें शामिल करने के लिए विवश हुईं हैं। ई-बुक्स के अतिरिक्त प्रिंट किताबों के बाज़ार पर भी ई-कॉमर्स का क़ब्ज़ा होता गया है। किताबों की दुकानें दिनों-दिन बंद होती जा रही हैं। इस क्षेत्र में भी अमेज़न का ही एकाधिकार है। इन आँकड़ों को जानना इसलिए आवश्यक है ताकि हम

---

[218] https://www.firstpost.com/business/elon-musk-threatens-to-move-tesla-headquarters-from-california-against-lockdown-measures-to-curb-virus-spread-8352461.html

[219] https://about.ebooks.com/ebook-industry-news-feed/

[220] https://www.mordorintelligence.com/industry-reports/e-book-market

यह समझ सकें कि अमेज़न द्वारा किताबों पर लगाए जाने वाले प्रतिबंध का असर क्या हो सकता है। इसका एक तकनीकी पहलू यह भी है कि अगर ये कम्पनियाँ चाहें तो ग्राहकों द्वारा ख़रीदी गयी किसी भी किताब को उनकी लाइब्रेरी से हटा सकती हैं।[221] वे ऐसा करती भी रही हैं।[222] प्रिंट किताबों के परम्परागत बाज़ार में ऐसा नहीं था। डिजिटल अर्थव्यवस्था और डिजिटल करेंसी के ख़तरों को भी इस परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। इस अर्थव्यवस्था में आम लोगों के पास ऐसा कुछ भी नहीं रहेगा, जिसे वे अपने संदूक में दबा कर रख सकें। वह आभासी आर्थिक दुनिया उँगलियों पर गिने जा सकने वाले पूँजीपतियों के पास धन के केंद्रीकरण को इतना बढ़ा देगी कि राष्ट्रों की प्रभुसत्ता निरर्थक होने लगेगी।

कोविड-काल की त्रासदी विश्व की आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था को लगा धक्का या बीमारी और लॉकडाउन से होने वाली मौतें ही नहीं हैं, बल्कि असली नुक़सान का पता तब लगेगा, जब सामाजिकता और स्वतंत्रता के नुक़सान का आकलन किया जाएगा। 'कोरोना-काल में एक ऐसा समाज बना है, जिसका एक मात्र मूल्य ज़िंदा रहना हो गया है।'[223] हर आदमी दूसरे से शंकित है। जैसा कि इटली के दार्शनिक प्रोफ़ेसर आगाम्बेन कहते हैं, 'आज हम एक ऐसे समाज में रह रहे हैं, जो तथाकथित 'सुरक्षा के कारणों' से अपनी आज़ादी को क़ुर्बान कर रहा है और ख़ुद को सम्भवत: हमेशा के लिए भय और असुरक्षा की स्थिति में रहने की सज़ा देने जा रहा है।'[224]

आर्टिफ़िशियल इंटेलीजेंस और सांख्यिकी-आधारित मॉडलिंग ने हमें ऐसे अंधकार में धकेल दिया है जिससे निकलने में शायद वर्षों लग जाएँगे। यह अनुपातहीन भय मनुष्य पर प्रौद्योगिकी की जीत के बढ़ते क़दमों का भी प्रमाण है, जिसका लाभ इनसे जुड़ी लोभी और सनकी संस्थाएँ उठा रही हैं। दिन-ब-दिन गहरे होते जा रहे इस अंधकार से निकलने का एक रास्ता यह है कि हम असंवेदनशील-अविवेकी विशाल पूँजी की ग़ुलाम कृत्रिम बुद्धि और कथित विज्ञान की जगह सहस्राब्दियों के दौरान विकसित हुए मानवीय विवेक की संवेदनशीलता को प्राथमिकता दें तथा मनुष्य को ग़ुलाम बनाने वाली प्रविधियों के ख़िलाफ़, चाहे वे कितने ही धवल वस्त्रों में क्यों न आयें, असहमति में हाथ उठा दें।

---

[221] https://www.legalzoom.com/articles/can-amazon-legally-delete-books-from-your-kindle

[222] https://www.theguardian.com/money/2012/oct/22/amazon-wipes-customers-kindle-deletes-account

[223] https://bookhaven.stanford.edu/2020/03/giorgio-agamben-on-coronavirus-the-enemy-is-not-outside-it-is-within-us/

[224] वही.